हमारे बुजुर्ग

भाग-१

माइल ख़ैराबादी

अनुवादक
ताहिर हाशिमी

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

(अल्लाह के नाम से जो बड़ा ही कृपाशील, अत्यन्त दयावान है।)

भूमिका

"तुम में अल्लाह के नज़दीक बुज़ुर्ग और इज़्ज़तवाला वह है जो तुममें सबसे ज़्यादा अल्लाह से डरनेवाला है।" —क़ुरआन 49:13

आम तौर पर बड़ा और बुज़ुर्ग उसे माना जाता है जो मालदार हो, ऊँचे ख़ानदान से हो, आलिम हो या जिसके पास हुकूमत हो। लेकिन इस्लाम में बड़ा और बुज़ुर्ग वह है जो सबसे ज़्यादा अल्लाह से डरता हो। आख़िरत के हिसाब से काँपता रहता हो। सच्ची बात यह है कि अल्लाह का डर और आख़िरत का ख़ौफ़ ही वह बेहतरीन अक़ीदा है जो इनसान को इनसान बना सकता है और इनसान बुरी बातों से बच सकता है। इनसान बुराइयों से जितना दूर रहेगा, इनसानियत से उतना ही क़रीब रहेगा।

हम ऐसे ही इनसानों को अच्छा, बुज़ुर्ग और बड़ा मानते हैं जो अल्लाह के डर से बुराइयों से बचते हैं। ऐसे ही बुज़ुर्गों का तरीक़ा और अमल हमारे लिए बेहतरीन नमूना है। हम उन्हीं की पैरवी में अपने लिए नजात समझते हैं। यही वजह है कि हम दुनिया के सारे इनसानों में ऐसे बुज़ुर्गों की तलाश में रहते हैं और उनके हालात महफ़ूज़ रखने की कोशिश करते हैं, ताकि लोग इन बुज़ुर्गों के हालात पढ़ें और नसीहत हासिल करें।

ऐसे बुज़ुर्गों में पहले नम्बर पर वे मुबारक लोग हैं जिन्होंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से तरबियत पाई, जिन्हें हम सहाब-ए-किराम (रज़ि०) कहते हैं। इनके बाद वे बुज़ुर्ग हैं जो सहाब-ए-किराम (रज़ि०) के शागिर्द हैं और उनके बाद उनके शागिर्द और फिर वे तमाम बुज़ुर्ग जो दर्जा-बदर्जा उन्हीं बुज़ुर्गों से फ़ैज़ पाते रहे।

हमारी कोशिश है कि ऐसे बुज़ुर्गों के हालात आसान ज़बान में पेश करें ताकि वे लोग भी फ़ायदा उठा सकें जो कम पढ़े-लिखे हैं।

अल्लाह तआला से दुआ है कि पढ़नेवालों के दिल नेकियों की तरफ़ माइल हों।

आमीन!

मई, 1969

माइल ख़ैराबादी

विषय-सूची

हज़रत सईद बिन मुसैयिब (रह०)

हमारे बुज़ुर्गों में हज़रत सईद बिन मुसैयिब (रह०) एक बहुत बड़े आलिम गुज़रे हैं। वे मदीना शरीफ़ के रहनेवाले थे और अपने ज़माने में सबसे बड़े आलिम माने जाते थे। वे सिर्फ़ एक आलिम ही नहीं थे, बल्कि आलिम बाअमल थे। यानी उन्होंने क़ुरआन और हदीस से जो इल्म हासिल किया था, उसपर चलते भी थे। वे हर वक़्त ख़याल रखते थे कि कहीं कोई काम क़ुरआन और हदीस के ख़िलाफ़ न हो जाए। वे उस ज़माने में पैदा हुए थे जब हमारे प्यारे नबी हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के बड़े-बड़े सहाबी यानी उनके प्यारे साथी मौजूद थे। उन्हीं बुज़ुर्गों से हज़रत सईद बिन मुसैयिब (रह०) ने क़ुरआन और हदीस का इल्म सीखा था। वे प्यारे रसूल (सल्ल०) के प्यारे सहाबा (रज़ि०) के बहुत मशहूर शार्गिद थे। उन्होंने प्यारे सहाबा से जो बात सीखी, उसे याद कर लिया और उसपर अमल करने लगे। इस तरह वे एक बड़े अच्छे और सच्चे मुसलमान बन गए। उनका इल्म जितना बढ़ा हुआ था उसी एतबार से उनका अमल भी था। इल्म व अमल ने उनका दर्जा इतना ऊँचा कर दिया था कि सहाबा भी उनसे मुहब्बत करते थे। चुनाँचे हुज़ूर (सल्ल०) के प्यारे सहाबी हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) उनसे इतना ख़ुश हुए की अपनी बेटी की शादी उनके साथ कर दी। किताबों में हज़रत सईद बिन मुसैयिब (रह०) की इतनी ख़ूबियाँ लिखी हुई हैं कि अगर हम उन सबको बयान करें तो एक अच्छी-ख़ासी किताब तैयार हो जाए। यहाँ उनकी एक बात लिखते हैं, उसे पढ़िए और सोचिए कि उनकी ज़िन्दगी में हमारे लिए क्या-क्या नसीहतें हैं।

अल्लाह तआला ने हज़रत सईद बिन मुसैयिब (रह०) को एक बड़ी अच्छी बेटी अता की थी। यह लड़की बड़ी समझदार थी । हज़रत सईद (रह०) ने उसे पढ़ाना शुरू किया तो उसने थोड़े ही दिनों में क़ुरआन और हदीस का इल्म हासिल कर लिया और क़ुरआन व हदीस में जो कुछ पढ़ा उसपर पूरी कोशिश से अमल भी करने लगी। वह चारों तरफ़ इल्मवाली

और इल्म पर अमल करनेवाली मशहूर हो गई। इसके साथ ही वह निहायत ख़ूबसूरत भी थी । इसके अलावा हम यह भी बता दें कि वह एक ख़ानदानी लड़की थी। मतलब यह है कि हज़रत सईद बिन मुसैयिब (रह०) क़ुरैश ख़ानदान से थे और क़ुरैश ख़ानदान पूरे अरब में बड़ी इज़्ज़तवाला ख़ानदान माना जाता था। इस तरह उसमें चार बड़ी-बड़ी ख़ूबियाँ थीं : (1) वह ऊँचे ख़ानदान से थी (2) वह निहायत ख़ूबसूरत थी, (3) वह बड़ी आलिमा यानी इल्मवाली थी, और (4) वह दीन की बातों पर चलनेवाली यानी दीनदार थी।

उस लड़की की ख़ूबियों की शोहरत फैली तो उसकी तारीफ़ ख़लीफ़ा अब्दुल मलिक के कानों तक भी पहुँची। ख़लीफ़ा अब्दुल मलिक उस वक़्त का सबसे बड़ा बादशाह था। उसने उस लड़की को अपनी बहू बनाना चाहा, अपने बेटे की शादी उससे करनी चाही। लेकिन हज़रत सईद बिन मुसैयिब ने अपनी लड़की की शादी शहज़ादे के साथ करने से साफ़ इनकार कर दिया। जी हाँ, शहज़ादे के साथ बेटी की शादी करने से इनकार कर दिया। जिसने भी यह सुना, दंग रह गया। ज़रा सोचिए तो यह लड़की बादशाह के यहाँ कैसे आराम से रहती। वहाँ हर तरह का सुख-चैन मिलता। हर वक़्त लौंडियाँ, बाँदियाँ हाथ बाँधे सामने खड़ी रहतीं। लड़की हर वक़्त धन-दौलत से खेलती; जैसा खाना चाहती, खाती; जैसे कपड़े और ज़ेवर चाहती, पहनती; जो जी चाहता करती। बादशाहों की ज़िन्दगियों में यही सब कुछ होता है। मगर एक बात न होने से सईद बिन मुसैयिब (रह०) ने यह रिश्ता पसन्द नहीं किया। वह बात यह थी कि वह ख़लीफ़ा अब्दुल मलिक को सच्चा ख़लीफ़ा ही नहीं मानते थे, बल्कि वह उसे एक ज़ालिम बादशाह समझते थे। ऐसा ज़ालिम बादशाह जिसके बड़े सरदार भी ज़ालिम थे। उसके सरदारों में सबसे बड़ा सरदार हज्जाज बिन यूसुफ़ था जो बड़ा ही ज़ालिम शख़्स था, और इस ज़ालिम को अब्दुल मलिक बहुत पसन्द करता था। बस इसी लिए हज़रत सईद बिन मुसैयिब (रह०) ने अपनी लड़की की शादी शहज़ादे के साथ करने से इनकार कर दिया। ख़लीफ़ा ने बहुत दबाव डाला, सताया भी। लेकिन हज़रत सईद बिन मुसैयिब (रह०) के

सामने प्यारे रसूल (सल्ल०) की वह हदीस थी जिसमें है कि लोग ख़ानदान, धन-दौलत, इल्म और ख़ूबसूरती को देखकर शादी करते हैं, लेकिन शादी दीनदार से करनी चाहिए, ज़ाहिर है कि ज़ालिम वही होगा जो दीनदार न होगा। फिर भला सईद बिन मुसैयिब (रह०) अब्दुल मलिक से रिश्ता कैसे जोड़ लेते? वे इस दुनिया के सुखों को मिट जानेवाले सुख समझते थे और ठीक भी यही है। सुख तो बस आख़िरत का सुख है। सच्चा मुसलमान तो इसमें ख़ुश रहता है कि वह अच्छे काम करके और दीन पर चलकर अल्लाह को ख़ुश करने की कोशिश करता रहे। हज़रत सईद बिन मुसैयिब (रह०) ऐसे ही थे और ऐसे ही आदमी को पसन्द करते थे। उनकी लड़की भी ऐसी ही थी।

शादी न करने पर जब अब्दुल मलिक ने बहुत ज़्यादा सताना शुरू किया तो हज़रत सईद बिन मुसैयिब (रह०) ने सोचा कि लड़की की शादी जल्द ही कहीं कर देनी चाहिए। अब यह देखिए कि उन्होंने अपनी लड़की के लिए दूल्हा कैसा तलाश किया। उनके शागिर्दों में एक बड़ा अच्छा शागिर्द था जिसका नाम था 'विदाआ' । एक बार ऐसा हुआ कि विदाआ कई दिन तक ग़ैरहाज़िर रहने के बाद जब सबक़ में हाज़िर हुआ तो सईद बिन मुसैयिब (रह०) ने पूछा, "इतने दिन कहाँ ग़ायब रहे?" विदाआ ने बताया, "बीवी का इन्तिक़ाल हो गया, इसी लिए हाज़िर न हो सका।"

"तुमने मुझे ख़बर क्यों नहीं दी?" हज़रत सईद बिन मुसैयिब ने पूछा। साथ ही यह भी कहा कि मैं भी जनाज़े की नमाज़ में शरीक होता। विदाआ यह सुनकर चुप हो गए। फिर जब उठकर चलने लगे तो हज़रत सईद बिन मुसैयिब (रह०) ने पूछा, "तुमने दूसरी शादी करने के बारे में कुछ सोचा या नहीं?"

"हज़रत मैं ग़रीब आदमी....." विदाआ ने कहना शुरू किया, "मुझे अपनी लड़की कौन देगा।" विदाआ से यह सुना तो फ़रमाया, "मैं दूँगा।" इसके बाद उसी वक़्त वहीं पर अपनी बेटी की शादी विदाआ के साथ कर दी, उसी लड़की की जिसे अब्दुल मलिक ने अपने लड़के के लिए माँगा था। उन्होंने विदाआ से न यह पूछा कि तुम किस ख़ानदान से हो,

न यह देखा कि विदाआ के पास कितनी दौलत है, न इसकी परवाह की विदाआ शक्लो सूरत के कैसे हैं। बस वे इतना जानते थे कि विदाआ बड़े दीनदार तालिब इल्म हैं।

निकाह हो जाने के बाद विदाआ अपने घर गए तो उन्होंने किसी को नहीं बताया कि शादी करके आ रहे हैं। शायद उनका ख़याल था कि जब तक बीवी घर में न आ जाए किसी को न बताएँ। और देखिए तो, विदाआ जो कपड़े पहनकर मदरसे गए थे, उन्हीं कपड़ों में शादी हुई थी। फिर लड़की के लिए भी कोई जोड़ा वग़ैरह नहीं था। यह भी हो सकता था कि अगर बताते तो लोग यक़ीन न करते और उल्टे मज़ाक़ उड़ाते।

अच्छा, अब आगे सुनिए। मग़रिब का वक़्त हुआ। हज़रत सईद बिन मुसैयिब ने बेटी को साथ लिया और दामाद के घर की तरफ़ चले। वहाँ विदाआ का यह हाल कि वह उस दिन रोज़े से थे। मग़रिब के बाद खाने के लिए उठे ही थे कि दरवाज़ा खटखटाने की आवाज़ आई। पूछा, "कौन साहब?" जवाब मिला, "सईद"। विदाआ ने सुना तो लेकिन समझे नहीं कि हज़रत सईद बिन मुसैयिब (रह०) होंगे। बात यह थी कि सईद बिन मुसैयिब (रह०) मस्जिद जाने के अलावा घर से निकलते ही नहीं थे। फिर भला विदाआ का ध्यान उनकी तरफ़ कैसे जाता? वे समझे सईद नाम के कोई साहब होंगे। जाकर दरवाज़ा खोला तो उन्हें देखा । अस्सलामु अलैकुम के बाद अर्ज़ किया, "आपने आने की तकलीफ़ क्यों की, मुझे बुलवा लिया होता। अच्छा, ख़ैर, फ़रमाइए क्या हुक्म है?"

कहने लगे कि भई जब तुम्हारी बीवी मौजूद है तो उसे तुम्हारे घर में होना चाहिए। मैं उसे लेकर आया हूँ। लो, यह है तुम्हारी बीवी!"

नई-नवेली दुल्हन वही रोज़ के कपड़े पहने बाप के पीछे खड़ी थी। न नया जोड़ा, न गहने और न पालकी। बाप के साथ पैदल ही शौहर के घर आई थी। हज़रत सईद बिन मुसैयिब (रह०) ने लड़की को विदाआ के घर में दाख़िल कर दिया और वहीं से 'अस्सलामु अलैकुम' कहकर वापस हो गए।

अब तो विदाआ की ख़ुशी न पूछिए। अब उन्हें लोगों को बताना ही

पड़ा। उस वक़्त विदाआ की वालिदा साहिबा किसी दूसरे घर में थीं, उन्होंने सुना तो दौड़ी हुई आईं। बहू को देखा तो बहुत ख़ुश हुईं। विदाआ कहते हैं कि हज़रत सईद बिन मुसैयिब की बेटी क़ुरआन की हाफ़िज़ा थीं, हदीस की आलिम थीं और अच्छी तरह जानती थीं कि अल्लाह और अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने अच्छी बीवी की क्या-क्या ख़ूबियाँ बयान फ़रमाई हैं।

देखा आपने, ये थे हज़रत सईद बिन मुसैयिब (रह०)। इसके बाद यह सोचिए क्या आजकल भी मुसलमान अपनी लड़की या लड़के की शादी के मौक़े पर इसी तरह सोचते हैं? सच्ची बात तो यह है कि आजकल के मुसलमान अपने दीन और बुज़ुर्गों के रास्ते से दूर होते जा रहे हैं। आजकल लोग इस तरह सोचते हैं कि शादी हो तो बड़े घराने में, चाहे वहाँ दीनदारी हो या न हो। शादी हो तो मालदार घराने में, चाहे माल हराम कमाई करके ही कमाया गया हो। शादी हो तो किसी ख़ूबसूरत के साथ चाहे वह पक्का शैतान ही क्यों न हो। फिर शादी भी इस तरह होती है कि उसमें ख़ूब पैसा ख़र्च किया जाता है। नाम करने के लिए तरह-तरह की रस्में की जाती हैं। इसके कुछ ही दिनों के बाद इन शादी करनेवालों को रोते हुए पाया जाता है कि हाय! शादी में सब कुछ लुटा दिया, अब इतने के क़र्ज़दार हैं। तो भाई, जो अल्लाह और अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के हुक्मों को नहीं मानता, दीनदार नहीं बनता उसका तो यही हाल होता है।

प्यारे नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया है कि सबसे अच्छी शादी वह है जिसमे कम से कम ख़र्च हो। इस हदीस को सामने रखिए और देखिए कि हज़रत सईद बिन मुसैयिब (रह०) ने कितनी अच्छी तरह अपनी बेटी की शादी की । अल्लाह उनपर अपनी रहमत नाज़िल फ़रमाए और उन लोगों पर भी जो उनकी पैरवी करें।

आमीन !

हज़रत इबराहीम बिन यज़ीद तैमी (रह०)

दो आलिम थे। दोनों का नाम भी एक ही था यानी इबराहीम और दोनों के वालिद साहिबान का नाम भी एक ही था यानी यज़ीद। दोनों बुज़ुर्ग एक ही ज़माने में थे, यानी प्यारे नबी (सल्ल०) के प्यारे सहाबा (रज़ि०) के शागिर्दों के ज़माने में। दोनों ने प्यारे सहाबा से ही दीन का इल्म सीखा था। दोनों आलिमों ने जो कुछ सीखा था, उसपर अमल भी करते थे, यानी वही काम करते थे जिनके करने का हुक्म क़ुरआन और हदीस में है। दोनों में बहुत-सी बातें मिलती-जुलती थीं, बस फ़र्क़ इतना था कि दोनों के ख़ानदान अलग-अलग थे। एक आलिम इबराहीम बिन यज़ीद तैमी कहलाते थे और दूसरे इबराहीम बिन यज़ीद नख़ई कहलाते थे।

यह दोनों आलिम हमारे बुज़ुर्गों में से हैं। इन बुज़ुर्गों के ज़माने में बड़ा ज़बरदस्त हाकिम हुआ है जिसका नाम हज्जाज था। यह हज्जाज बड़ा ज़ालिम शख़्स था। उसने हमारे प्यारे रसूल (सल्ल०) के कई प्यारे सहाबा यानी साथियों को जान से मरवा दिया था। इस ज़ालिम ने और बहुत-से अच्छे-अच्छे दीनदार आलिमों को भी क़त्ल करा दिया था। इसी लिए वे बुज़ुर्ग जो सहाबा और दीनदार लोगों से मुहब्बत करते, उसे ज़ालिम कहते थे और इन्हीं ज़ालिम कहनेवालों में एक बुज़ुर्ग इबराहीम बिन यज़ीद नख़ई (रह०) भी थे। इसी वजह से हज्जाज उनकी जान का दुश्मन हो गया और अपने सिपाहियों को हुक्म दिया कि इबराहीम बिन यज़ीद नख़ई को पकड़ लाओ।

यह बात दूसरे आलिम हज़रत इबराहीम बिन यज़ीद तैमी (रह०) को भी मालूम हुई। उन्होंने सोचा कि हज़रत इबराहीम बिन यज़ीद नख़ई (रह०) की जान बचाना चाहिए। वे यह सोचकर चले और उधर से गुज़रे जहाँ हज्जाज के सिपाही हज़रत इबराहीम बिन यज़ीद नख़ई (रह०) को तलाश कर रहे थे। आलिम साहिबान जिस तरफ़ निकलते हैं तो लोग उनकी चाल-ढाल से पहचान लेते हैं कि वे आलिम हैं। उनके लिबास और बोल-चाल,

रंग-ढंग, उठना-बैठना, ग़रज़ कि उनकी हर चीज़ ख़ुद ही बता देती है कि वे आलिम हैं। चुनाँचे जब हज्जाज के सिपाहियों की नज़र इबराहीम तैमी पर पड़ी तो उन्होंने आपको रोका और नाम पूछा। आपने कहा, "इबराहीम"। पूछा, "बाप का नाम"। आपने जवाब दिया, "यज़ीद"।

"अच्छा, तुम ही इबराहीम बिन यज़ीद हो !" कहकर सिपाहियों ने इबराहीम बिन यज़ीद नख़ई के बदले इबराहीम बिन तैमी (रह०) को पकड़ लिया और हज्जाज के सामने ले गए। उसने हुक्म दिया कि जेलख़ाने में बंद कर दो और ख़ूब सताओ।

चुनाँचे हज्जाज के हुक्म से हज़रत इबराहीम बिन यज़ीद तैमी (रह०) को जेल में डाल दिया गया। उनको भूखा-प्यासा रखा गया, पानी में ग़ोते दिए गए, पैरों में भारी ज़ंजीरें डाल दी गईं। हज़रत इबराहीम बिन यज़ीद तैमी (रह०) यह दुख सहते रहे और तकलीफ़ें उठाते रहे लेकिन भेद न खोला। यानी यह नहीं बताया कि जिस इबराहीम बिन यज़ीद की तलाश में हो, वह मैं नहीं हूँ। जब नहीं बताया तो जेल ही में बंद पड़े रहे और कड़ी सज़ाएँ सहते रहे। जेल की सज़ाएँ सहते-सहते आख़िर एक दिल अल्लाह को प्यारे हो गए। उसी रात हज्जाज ने ख़्वाब में देखा कि एक जन्नती का इन्तिक़ाल हो गया। सुबह को उसने सुना कि हज़रत इबराहीम बिन यज़ीद चल बसे।

उस ज़ालिम ने हज़रत इबराहीम बिन यज़ीद तैमी (रह०) की लाश कूड़े में डलवा दी। बाद में भी वह इसी धोखे में रहा कि उसने हज़रत इबराहीम बिन यज़ीद नख़ई (रह०) को मरवा दिया है।

सुबहानल्लाह! कितना बड़ा काम कर गए हज़रत इबराहीम बिन यज़ीद तैमी (रह०)! एक बुज़ुर्ग की जान बचाने के लिए अपनी जान क़ुरबान कर दी। अल्लाह की रहमत हो उनपर! अल्लाह हमें भी तौफ़ीक़ दे कि हम भी वैसे ही काम कर जाएँ जैसे हमारे बुज़ुर्गों ने किए। ज़्यादा से ज़्यादा दूसरों के काम आएँ और दूसरों को मुसीबत से बचाने के लिए अपनी जान की परवाह न करें। इसी को कहते हैं ईसार और क़ुरबानी! ईसार और क़ुरबानी का सवाब अल्लाह के यहाँ बहुत ज़्यादा है।

हज़रत हाफ़िज़ हशीम बिन बशीर (रह०)

तक़रीबन 1300 साल पहले बुख़ारा नामी शहर में एक बावर्ची रहता था, जिसका नाम था बशीर । बशीर बावर्ची बेहतरीन खाना पकानेवाला था। वह इतने मज़ेदार और तरह-तरह के खाने पकाता था कि खानेवाले मज़े ले-लेकर खाते थे और उँगलियाँ चाटते रह जाते थे। मछली तो वह नए-नए तरीक़ों से पकाता था। यही वजह थी कि उस वक़्त के बड़े-बड़े नवाब और हाकिम उसे ऊँची से ऊँची तनख़्वाह देकर अपने यहाँ रखना पसन्द करते थे।

जो आदमी जिस काम में ज़्यादा तरक़्क़ी करता है यानी ख़ूब कमाई करता है तो वह चाहता है कि उसका बेटा भी वही काम करे और ख़ूब रुपये-पैसे कमाकर आराम से ज़िन्दगी गुज़ारे। बशीर बावर्ची भी यही चाहता था। उसे अल्लाह ने बड़ा समझदार बेटा दिया था । बेटे का नाम हशीम था । बशीर बावर्ची ने हशीम मियाँ को भी खाना पकाने के काम में लगाना चाहा। लेकिन हशीम का दिल इस काम में न लगा। उसे तो इल्म हासिल करने का शौक़ था, ऐसा इल्म नहीं जैसा कि आजकल लोग हासिल करते हैं कि पढ़-लिखकर नौकरियाँ ढूँढते फिरें। हशीम बिन बशीर तो क़ुरआन और हदीस का इल्म हासिल करना चाहते थे। वे जानना चाहते थे कि हमारे लिए अल्लाह के क्या हुक्म हैं। प्यारे रसूल (सल्ल०) ने अल्लाह के हुक्मों के बारे में क्या बताया, समझाया और उन्हें किस तरह करके दिखाया।

हशीम मियाँ अपने वालिद की हर बात मानते थे, उनका कहा कभी नहीं टालते। अब वे यह करते कि खाना पकाना भी सीखते और जब वक़्त मिलता तो क़ुरआन और हदीस के आलिमों के पास पहुँच जाते। उनसे क़ुरआन पढ़ते, हदीस सुनते। जो पढ़ते उसे याद रखते और जो सुनते उसे ज़ेहन में महफ़ूज़ कर लेते। अल्लाह ने उनको बड़ी अच्छी समझ दी थी। उन्हें सबक़ बड़ी जल्दी याद हो जाता। हशीम मियाँ पर यह अल्लाह

की बड़ी मेहरबानी थी कि एक बार जो याद कर लेते उसे फिर कभी नहीं भूलते थे।

हशीम मियाँ के बचपन में बहुत-से ऐसे नेक और अच्छे आलिम थे, जिन्होंने प्यारे रसूल (सल्ल०) के साथियों यानी उनके सहाबा (रज़ि०) से क़ुरआन और हदीस का इल्म हासिल किया था। उन्हीं में एक आलिम क़ाज़ी अबू शीबा (रह०) थे। क़ाज़ी साहब ने एक मदरसा खोल रखा था। हशीम मियाँ भी उस मदरसे में जाने लगे। लेकिन इससे खाना पकाने के काम में हर्ज होने लगा। बाप ने रोका, ख़फ़ा भी हुए और समझाया कि ऐसा काम करो जिससे चार पैसे मिलें। लेकिन हशीम मियाँ को तो इल्म हासिल करने कि धुन थी। वे मदरसे जाते रहे और क़ाज़ी साहब से क़ुरआन और हदीस की बातें सीखते रहे। उसी ज़माने में हशीम मियाँ एक बार बीमार हो गए और मदरसे न जा सके। क़ाज़ी साहब ने लोगों से उनके बारे में पूछा तो उन्हें मालूम हुआ कि वे बीमार हैं। यह सुना तो क़ाज़ी साहब हशीम मियाँ को देखने चले। क़ाज़ी साहब जाने लगे तो दूसरे उस्ताद भी साथ हो लिए। सभी उस्ताद हशीम मियाँ से बहुत ख़ुश रहते थे। सभी जानते थे कि वे बहुत ही लायक़ और मेहनती हैं। उस्तादों को उनसे मुहब्बत हो गई थी।

ये सभी बुज़ुर्ग बशीर बावर्ची के घर पहुँचे तो बशीर दंग रह गए। अब उनकी आँखें खुलीं कि इल्म से आदमी कितना बड़ा हो जाता है। क़ाज़ी साहब और उनके साथियों का किसी के दरवाज़े पर पहुँचना बहुत बड़ी बात थी। आस-पास के लोग भी आ-आकर जमा हो गए और कहने लगे, "कैसा ख़ुशक़िस्मत है बशीर! उनके यहाँ ऐसे-ऐसे बुज़ुर्ग आए।" बशीर ख़ुशी से फूले न समा रहे थे। क़ाज़ी साहब ने उनके घर के अन्दर जाकर हशीम मियाँ को देखा, हाल पूछा, दुआ की और चले आए।

क़ाज़ी साहब के जाने के बाद बशीर ने बेटे से कहा, "मैं तुम्हें इल्म हासिल करने से रोकता था, मगर अब मना नहीं करूँगा। मैं नहीं जानता था कि एक दिन तुम्हारा रुतबा इतना बढ़ेगा कि क़ाज़ी साहब के क़दम

मेरे घर पर आएँगे, क़ाज़ी साहब के क़दम बड़े-बड़े हाकिमों के यहाँ पहुँचते हैं तो वे भी इसे अपनी ख़ुशक़िस्मती समझते हैं।''

बाप ने इस तरह की बातें कीं तो अच्छे होने पर हशीम मियाँ और ज़्यादा वक़्त मदरसे में देने लगे, ज़्यादा मेहनत और ध्यान से पढ़ने लगे। अपना इल्म बढ़ाने के लिए घर छोड़कर दूर-दूर जाने लगे। जिस बुज़ुर्ग के बारे में सुना कि वे प्यारे रसूल (सल्ल०) की कोई हदीस जानते हैं, उनके पास जा पहुँचे। जाकर पूछा, ''जनाब, आप इस हदीस के बारे में बताएँ कि आपने प्यारे रसूल (सल्ल०) के प्यारे साथियों से इसे किस तरह सुना है।'' वे बुज़ुर्ग जिस तरह हदीस सुनाते, उसे उसी तरह याद कर लेते और उसपर अमल करना भी शुरू कर देते।

जी हाँ, अमल करना शुरू कर देते थे। इसी लिए तो वे क़ुरआन और हदीस की बातों की खोज में रहते थे। और यही वजह है वे मक्का शरीफ़, मदीना शरीफ़, बसरा, कूफ़ा, बग़दाद और न जाने कहाँ-कहाँ गए, बड़े-बड़े आलिमों, इमामों से मिले। हज़रत उमर बिन दीनार (रह०) से भी मिले और उनसे हदीस का इल्म हासिल किया। फिर तो वे इतने बड़े आलिम हो गए कि उनके ज़माने में उनसे बड़ा आलिम कोई न था। लोग उन्हें हाफ़िज़ इमाम हशीम कहने लगे और उनसे इल्म हासिल करने लगे। हाफ़िज़ हशीम ने बग़दाद में दर्स देना शुरू किया।

हाफ़िज़ साहब के कुछ शागिर्दों के नाम सुनिए———

इमाम मालिक (रह०) जो आगे चलकर बहुत बड़े इमाम हुए।

इमाम अहमद बिन हंबल (रह०)। यह भी बहुत बड़े इमाम हुए।

इमाम हम्माद (रह०) यह इतने बड़े आलिम थे कि इमाम अबू हनीफ़ा इनके शागिर्द थे।

देखा आपने! इल्म इनसान के रुतबे को कितना बढ़ाता है। हाफ़िज़ हशीम बिन बशीर एक बावर्ची के बेटे थे। लेकिन आज वे एक बड़े बुज़ुर्ग माने जाते हैं। बात यह है कि हम बड़ा और बुज़ुर्ग उसे मानते हैं जो क़ुरआन और हदीस का इल्म रखता हो और उसपर अमल भी करता हो। हमारे

नज़दीक बड़ा वह नहीं जिसके पास माल है, या जो बड़े ख़ानदान से है, या जो बड़ा बादशाह है। हमारे बुज़ुर्ग तो वे हैं जो अल्लाह से डरते हैं। क़ुरआन में है——

> "तुममें अल्लाह के नज़दीक बुज़ुर्ग और बड़ा वह है जो सबसे ज़्यादा अल्लाह से डरता हो।" —49:13

हाफ़िज़ हशीम (रह०) सन् 104 हि० में पैदा हुए और 183 हि० में अल्लाह को प्यारे हुए। उनपर अल्लाह की रहमत हो!

हज़रत ख़्वाजा हसन बसरी (रह०)

हज़रत ख़्वाजा हसन बसरी (रह०) हमारे उन बुज़ुर्गों में से हैं जिनको अल्लाह तआला ने बड़ा मरतबा दिया। उनकी एक बुज़ुर्गी तो यही है कि उन्होंने बचपन में उम्मुल मोमिनीन हज़रत उम्मे सलमा (रज़ि०) का दूध पिया। उनकी दूसरी ख़ुशक़िस्मती यह कि वे तमाम उम्मुहातुल मोमिनीन के घर जाया करते थे और सबसे अच्छी-अच्छी बातें और क़ुरआन व हदीस का इल्म सीखा करते थे। ख़्वाजा साहब ने प्यारे रसूल (सल्ल०) के प्यारे साथियों यानी उनके सहाबा (रज़ि०) से भी दीन का इल्म हासिल किया। मेहनती भी थे और अल्लाह ने अक़्ल भी अच्छी दी थी। वे थोड़े ही दिनों में बड़े आलिम हो गए, सिर्फ़ आलिम ही नहीं, बल्कि आपनें क़ुरआन व हदीस का जितना भी इल्म सीखा उसपर अमल भी किया और दूसरों तक भी ख़ूब पहुँचाया।

ख़्वाजा साहब (रह०) को आख़िरत की पूछ-गछ और ख़ुदा की नाराज़गी का हर वक़्त ख़याल रहता था। हर वक़्त डरते रहते थे कि कहीं कोई ऐसा काम न हो जाए, कोई ऐसी बात मुँह से न निकल जाए जिससे ख़ुदा नाराज़ हो जाए और फिर क़ियामत के दिन बुरे लोगों में खड़ा करे। यही वजह थी कि वे हमेशा वही काम करते जो अल्लाह को पसन्द हैं। धन-दौलत और ठाठ-बाट की तरफ़ उनका ध्यान कभी न जाता था। आप फ़रमाया करते थे कि माल पाकर ज़्यादातर लोग ख़ुदा को भूल जाते हैं।

ख़्वाजा साहब (रह०) के ज़माने में एक बड़ा ज़ालिम हाकिम हुआ है जो अपने ज़ुल्मों की वजह से बड़ा बदनाम है। उसका नाम था हज्जाज बिन यूसुफ़। एक बार उसने एक महल बनवाया जो बहुत ख़ूबसूरत और मज़बूत था। उसमें हर तरह का ठाठ-बाट का सामान सजाया गया और फिर लोगों को देखने के लिए बुलाया गया। सारे शहर से लोग आते, महल को देखते और ख़ुब उसकी तारीफ़ें करते।

हज्जाज बिन यूसुफ़ ने देखा कि सब लोग आए लेकिन ख़्वाजा हसन

बसरी महल देखने नहीं आए तो उसने उनको बुला भेजा। आप जाना तो न चाहते थे, लेकिन लोगों के कहने-सुनने से चले गए। महल को देखा, महल की सजावट देखी, महल की ख़ूबसूरती देखी। जब आप यह देखकर वापस हुए तो हज्जाज ने पूछा, "ख़्वाजा साहब, महल में कोई ऐब तो नज़र नहीं आया? अगर कोई ऐब नज़र आया हो तो बताइए ताकि उसे दूर कर दिया जाए।" आपने जवाब दिया, "हाँ, एक ऐब है, बहुत बड़ा ऐब!" पूछा, "क्या ऐब है?" फ़रमाया, "एक न एक दिन यह महल और इसका साज़ो सामान सब पुराना हो जाएगा और फिर फ़ना हो जाएगा, यानी मिट जाएगा। तू यह ऐब दूर नहीं कर सकता। समझदार वह है जो ऐसे महल बनाने की कोशिश करे जो न कभी पुराने हों और न कभी मिट सकें (यानी जन्नत के महल जो अल्लाह अपने नेक बन्दों को देगा)।"

ख़्वाजा साहब से जब यह सुना तो हज्जाज दिल में बहुत झुंझलाया, लेकिन उनसे कुछ न कहा। सिर्फ़ इतना कहकर वापस कर दिया कि वे बूढ़े हो गए हैं।

कैसी खरी-खरी सुनानेवाले थे हाकिमों को हमारे बुज़ुर्ग! अगर हम अपने बुज़ुर्गों के नाम लेवा हैं तो हमें भी किसी से नहीं डरना चाहिए और यह उसी वक़्त हो सकता है जब हम ख़ुदा से डरें। दिल में ख़ुदा का डर होने से फिर किसी का डर नहीं होता और न इनसान किसी लालच में फँसता है।

हज़रत क़ाज़ी शुरैह (रह०)

हमारे बुज़ुर्गों में एक बहुत ही मशहूर क़ाज़ी हुए हैं। क़ाज़ी उसे कहते हैं जो अदालत में बैठकर फ़ैसला करते हैं। आजकल उन्हें जज कहा जाता है। क़ाज़ी और जज का काम यह है कि वह सभी मामलों का ठीक-ठीक फ़ैसला करे। न किसी से दबे और न किसी लालच में आए। उसे डर हो तो बस अल्लाह का। यह डर कि अगर जान-बूझकर ग़लत फ़ैसला कर दिया या किसी डर या लालच की वजह से फ़ैसला कुछ से कुछ कर दिया तो फिर क़ियामत के दिन अल्लाह बड़ी कड़ी सज़ा देगा।

आख़िरत से डरनेवाले क़ाज़ी और जज सबसे अच्छा फ़ैसला कर सकते हैं। हमारे बुज़ुर्गों में ऐसे बहुत-से क़ाज़ी हुए जो बादशाहों से भी न डरे और उनके ख़िलाफ़ फ़ैसला दिया। किसी तरह के लालच में न आए, न किसी डर से कभी कोई ग़लत फ़ैसला किया। ऐसे क़ाज़ियों में से एक क़ाज़ी साहब के आज हम सिर्फ़ दो-तीन फ़ैसले सुनाते हैं। इन क़ाज़ी साहब का नाम था क़ाज़ी शुरैह।

एक बार हज़रत उमर (रज़ि०) ने एक घोड़ा ख़रीदा। यह तो आप जानते ही होंगे कि हज़रत उमर (रज़ि०) बहुत बड़े ख़लीफ़ा हुए हैं। घोड़ा ख़रीदने के बाद उन्होंने घोड़ा एक दूसरे आदमी को दे दिया कि सवार होकर देखे, घोड़ा ठीक भी है या नहीं। वह शख़्स घोड़े पर सवार हुआ। इत्तिफ़ाक़ की बात, घोड़ा सवारी में चोट खाकर दाग़ी हो गया। अब हज़रत उमर (रज़ि०) ने घोड़ा वापस करना चाहा। लेकिन घोड़े के मालिक ने घोड़ा वापस लेने से इनकार कर दिया।

हज़रत उमर (रज़ि०) ने अदालत में दावा दायर कर दिया। उस वक़्त अदालत के क़ाज़ी हज़रत शुरैह ((रह०) थे।

क़ाज़ी साहब ने दोनों फ़रीक़ों के बयानात सुने और फ़ैसला दिया कि चूँकि घोड़ा ख़रीदने के बाद दाग़ी हुआ है इसलिए वापस नहीं हो सकता।

देखा आपने! क़ाज़ी साहब ने मुसलमानों के ख़लीफ़ा के ख़िलाफ़ फ़ैसला दे दिया। वे अमीरुल मोमिनीन से ज़रा भी न दबे। अमीरुल मोमिनीन भी बड़े इनसाफ़ पसन्द ख़लीफ़ा थे। क़ाज़ी साहब का फ़ैसला सुनकर बहुत ख़ुश हुए और उसी वक़्त उन्हें कूफ़े का सबसे बड़ा क़ाज़ी बना दिया।

क़ाज़ी शुरैह (रह०) का एक लड़का था, उसने किसी से कुछ सौदा किया फिर न जाने क्या हुआ कि दोनों में झगड़ा ओ गया। ज़्यादती क़ाज़ी साहब के लड़के की थी। उसने सोचा कि अदालत में दावा कर देना चाहिए, मेरे बाप तो क़ाज़ी हैं ही। दावा दायर करने से पहले क़ाज़ी साहब से राय ली, साथ ही यह भी पूछा कि अगर मैं जीत जाऊँ तो दावा दायर कर दूँ।

क़ाज़ी साहब ने थोड़ी देर सोचा, फिर कहा कि दावा दायर कर दो। लड़के ने अदालत में दावा दायर कर दिया। लेकिन जब मामला क़ाज़ी साहब के सामने पेश हुआ तो क़ाज़ी साहब ने फ़ैसला बेटे के ख़िलाफ़ कर दिया। अब तो बेटा बहुत बिगड़ा। उसने कहा कि अगर पहले ही बता देते तो मैं दावा ही क्यों करता। क़ाज़ी साहब ने कहा, "बेटा, अगर मैं पहले ही बता देता तो तू अपने साझी से मामला औने-पौने में तय कर लेता। इस तरह तू ज़ालिम ठहरता।" इसके बाद कहा, "बेटे तू मुझे दुनिया के सारे लोगों से ज़्यादा प्यारा है, लेकिन ख़ुदा तुझसे भी ज़्यादा प्यारा है।"

अमीरुल मोमिनीन और बेटे के बारे में फ़ैसले के बाद अब एक और फ़ैसला सुनिए। हज़रत उमर (रज़ि०) के बाद हज़रत उसमान (रज़ि०) ख़लीफ़ा हुए और उनके बाद हज़रत अली (रज़ि०)।

एक बार हज़रत अली (रज़ि०) की ज़िरह कहीं गिर पड़ी और एक यहूदी ने उसे उठा लिया। हज़रत अली (रज़ि०) ने उसके पास अपनी ज़िरह देखी तो कहा, "यह ज़िरह तो मेरी है, मुझे दो।" मगर उस यहूदी ने जवाब दिया कि नहीं, यह ज़िरह तो मेरी है, और ज़िरह हज़रत अली (रज़ि०) को देने से इनकार कर दिया। तौबा-तौबा कितना बड़ा झूठ बोल दिया। उसके दिल में ख़ुदा का ख़ौफ़ तो था नहीं, इसलिए झूठ बोलते ज़रा भी

न डरा। हज़रत अली (रज़ि०) ने अदालत में दावा कर दिया। उस वक़्त भी हजरत शुरैह (रह०) ही क़ाज़ी थे।

क़ाज़ी साहब ने यहूदी से पूछा, "तुम किस बिना पर कहते हो कि यह ज़िरह तुम्हारी है।" उसने जवाब दिया कि चूँकि यह मेरे पास है, इसलिए इससे बढ़कर और क्या कहा जा सकता है।

अब क़ाज़ी साहब ने हज़रत अली से पूछा कि आपका कोई गवाह है। हज़रत अली (रज़ि) ने अपने बेटे हज़रत हसन (रज़ि०) और अपने ग़ुलाम कुंबर को गवाह के तौर पर पेश किया। लेकिन क़ाज़ी साहब ने बेटे की गवाही को न माना और कहा कि दूसरा गवाह लाओ। हज़रत अली (रज़ि०) कोई और गवाह न ला सके और क़ाज़ी साहब (रह०) ने फ़ैसला सुना दिया——"मैं बाप के मुक़दमें में बेटे की गवाही को नहीं मानता। इसके बाद अली का गवाह एक ही रह जाता है। अली दूसरा गवाह न ला सके इसलिए यहूदी ज़िरह अपने पास रखे।"

लीजिए, हज़रत अली (रज़ि०) भी मुक़दमा हार गए। लेकिन हज़रत अली (रज़ि०) क़ाज़ी साहब (रह०) की समझदारी पर बहुत ख़ुश हुए। उन्हें तो ख़ुश होना ही था, क्योंकि वे उस वक़्त अमीरुल मोमिनीन थे और उनके क़ाज़ी ने इनसाफ़ के मुताबिक़ फ़ैसला किया था। उधर वह यहूदी भी फ़ैसला सुनकर दंग रह गया। इस बेलाग फ़ैसले का उसपर ऐसा असर पड़ा कि वह मुसलमान हो गया। उसने हज़रत अली (रज़ि०) से कहा, "लीजिए, यह ज़िरह असल में आप ही की है, कैसा सच्चा है आपका दीन कि मुसलमानों का क़ाज़ी अमीरुल मोमिनीन के ख़िलाफ़ एक यहूदी के हक़ में फ़ैसला करता है!"

हज़रत अली (रज़ि०) उस यहूदी के मुसलमान होने से बहुत ख़ुश हुए और इस ख़ुशी में ज़िरह उसी को दे दी।

ये तीन फ़ैसले सुने आपने। इन क़ाज़ी साहब के ऐसे फ़ैसले हज़ारों हैं, वे साठ साल तक क़ाज़ी के ओहदे पर रहे थे। आप समझे कि क़ाज़ी शुरैह (रह०) ऐसे अच्छे फ़ैसले कैसे करते थे। बात यह थी कि उन्होंने दीन का इल्म ख़ूब अच्छी तरह हासिल किया था और याद रखा था।

प्यारे रसूल (सल्ल०) के प्यारे साथियों (सहाब-ए-किराम रज़ि०) से क़ुरआन, हदीस और फ़िक़्ह का इल्म हासिल किया था। साथ ही अल्लाह ने उनको समझ भी बड़ी अच्छी दी थी। उनके उस्तादों में हज़रत उमर, हज़रत अली, हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसऊद और हज़रत ज़ैद बिन साबित (रज़ि०) जैसे बड़े-बड़े सहाबा थे।

दूसरी बात वही थी जो हमने ऊपर लिखी यानी क़ाज़ी शुरैह (रह०) अल्लाह से बहुत डरते थे। आख़िरत के दिन के हिसाब-किताब के डर से हर वक़्त काँपते रहते थे। यह आख़िरत का डर ही था कि वे फ़ैसला करते वक़्त न तो अपने ख़लीफ़ा से दबे और न बेटे की परवाह की। यही वजह थी कि उनके फ़ैसले बेलाग होते थे। कहते हैं कि उनके बाद आज तक उनसे बड़ा क़ाज़ी या जज कोई न हो सका। अल्लाह तआला से दुआ है कि हर ज़माने में ऐसे क़ाज़ी हों। अल्लाह तआला हम सबको भी हज़रत क़ाज़ी शुरैह (रह०) की तरह सच्चा बनाए, हमारे दिलों में अल्लाह के सिवा न किसी का डर हो न किसी तरह का लालच।

आमीन !

हज़रत इमाम मुहम्मद (रह०)

हमारे बुज़ुर्गों में कुछ ऐसे आलिम और इमाम हुए हैं कि अगर अल्लाह तआला उन्हें पैदा न करता तो हमें यह भी न मालूम हो पाता कि नमाज़ कैसे पढ़ें, वुज़ू किस तरह करें, रोज़े ठीक-ठीक कैसे रखें, हज कैसे करें और किस तरह हराम और हलाल की पहचान करें। इन बुज़ुर्गों में बड़े इमाम ये हैं:—— इमाम मालिक (रह०), इमाम अबू हनीफ़ा (रह०), इमाम शाफ़ई (रह०), इमाम अहमद बिन हंबल (रह०), इमाम अबू यूसुफ़ (रह०) और इमाम मुहम्मद (रह०) वग़ैरह।

इमाम मुहम्मद (रह०) ग़ुलाम के बेटे थे। एक ज़माना था कि ग़ुलामों की कोई इज़्ज़त नहीं थी। उन्हें भेड़-बकरी और खीरा-ककड़ी की तरह बेचा और ख़रीदा जाता था। उनके मालिक जिस तरह चाहते उन्हें रखते और जो चाहते उन्हें खिलाते और पहनाते। वे इस तरह रखे जाते जैसे कि वे इनसान नहीं जानवर हों कि उनसे दिन-रात काम लो और खिलाओ-पिलाओ, बस! लेकिन फिर अल्लाह ने अपनी मेहरबानी से हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) को अपना आख़िरी नबी बनाकर भेजा और आपने ग़ुलामों को उनका हक़ दिया। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया कि ग़ुलाम भी दूसरे इनसानों कि तरह अल्लाह के बंदे और इनसान हैं। उनसे भाइयों और बेटों की तरह बरताव करो। प्यारे नबी (सल्ल०) के हुक्म के मुताबिक़ आप (सल्ल०) के प्यारे साथी यानी सहाबा (रज़ि०) ने पूरा-पूरा अमल किया और ग़ुलामों को अपने बेटों की तरह रखा। उनको ऐसा करते देखकर दूसरे लोगों ने भी ग़ुलामों पर तरस खाया और जिस तरह अपने घरवालों को रखा, उसी तरह अपने ग़ुलामों को भी पाला-पोसा, सिखाया-पढ़ाया। फिर तो ग़ुलामों में ऐसे-ऐसे समझदार और नेक लोग पैदा हुए कि उन जैसा दूसरा पैदा न हुआ। यह सब अल्लाह की मेहरबानी थी और यह सब इस्लाम की तालीम की बरकत थी। ग़ुलामों में बड़े-बड़े और अच्छे-अच्छे बादशाह हुए, बड़े-बड़े बहादुर सिपाही हुए और बड़े-बड़े आलिम और इमाम हुए।

इन ग़ुलामों ने ऐसे-ऐसे काम किए कि आज हम उनको अपना बुज़ुर्ग मानते हैं और हमें उनकी बदौलत इज़्ज़त मिली हुई है।

हज़रत इमाम मुहम्मद (रह०) के वालिद हसन ग़ुलाम थे। वे दमिश्क़ के पास एक गाँव 'हरिसता' में रहते थे और 'बनू शेबान' की ग़ुलामी करते थे। वे एक सिपाही थे, एक फ़ौज के साथ 'वास्ता' नामी बस्ती की तरफ़ गए। इमाम मुहम्मद (रह०) 'वास्ता' ही में पैदा हुए। यह वह ज़माना था जब प्यारे रसूल (सल्ल०) के प्यारे शागिर्दों के शागिर्द और उन्हें देखनेवाले ज़िन्दा थे और उनमें बड़े-बड़े इमाम मौजूद थे। इमाम मुहम्मद (रह०) सन् 132 हि० में पैदा हुए थे।

इमाम मुहम्मद (रह०) के वालिद हसन ने अपनी ज़िन्दगी में ख़ूब दौलत कमाई और जब वे अल्लाह को प्यारे हुए तो उन्होंने तीस हज़ार की रक़म छोड़ी जो इमाम मुहम्मद (रह०) को मिली। इमाम साहब को क़ुरआन और हदीस की तालीम का बड़ा शौक़ था। अल्लाह ने उन्हें समझ भी बड़ी अच्छी दी थी । उन्होंने यह सारी रक़म क़ुरआन और हदीस की तालीम पर ख़र्च कर डाली। किसी बड़े आलिम और इमाम का नाम सुना और उसके पास जा पहुँचे, मेहनत के साथ पढ़ा। इस तरह उन्होंने बड़े-बड़े इमामों से दीन का इल्म हासिल किया। उनके उस्तादों में इमाम मालिक (रह०) और इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) बहुत मशहूर हैं।

इमाम मुहम्मद (रह०) बहुत ख़ूबसूरत आदमी थे। मशहूर है कि जब उनके बाप उनको लेकर इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) के पास गए और उन्हें उनके मदरसे में दाख़िल किया तो इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) उनकी ख़ूबसूरती देखकर दंग रह गए। फिर जब यह देखा कि उन्हें इल्म का बड़ा शौक़ है, मेहनती भी हैं और समझ भी अच्छी है तो बड़ी मेहनत से पढ़ाया। अल्लाह की मेहरबानी से इमाम मुहम्मद (रह०) बीस साल की उम्र में ही बड़े आलिम हो गए और ख़ुद दुसरों को सबक़ देने लगे।

इल्म हासिल करने के शौक़ में इमाम मुहम्मद (रह०) इमाम मालिक (रह०) के पास मदीना शरीफ़ भी गए और उनसे भी वे सारी हदीसें सीखीं जो उन्होंने इकट्ठी की थीं। जब वे पहले-पहल इमाम मालिक (रह०) के

पास पहुँचे तो उनसे एक सवाल किया। पूछा, "हज़रत एक बात बताइए। एक शख़्स नापाक है। पानी मस्जिद में है, लेकिन नापाकी कि हालत में मस्जिद में जा नहीं सकता और नमाज़ का वक़्त भी हो रहा है। अब वह शख़्स क्या करे, पानी किस तरह ले?"

इमाम मालिक ने फ़रमाया, "नापाकी की हालत में वह शख़्स मस्जिद में नहीं जा सकता।" इमाम मुहम्मद (रह०) ने कहा, " जनाब यह ठीक है, लेकिन नमाज़ का वक़्त निकला जा रहा है।" इसपर इमाम मालिक (रह०) ने फ़रमाया, "अच्छा, तुम ही बताओ कि वह शख़्स क्या करे?" इमाम मुहम्मद (रह०) ने कहा, "उस आदमी को चाहिए कि मस्जिद के बाहर तयम्मुम कर ले, फिर मस्जिद में जाकर पानी ले और नहाकर नमाज़ पढ़ ले।" यह जवाब सुना तो इमाम मालिक (रह०) बहुत ख़ुश हुए। फिर जब उन्हें यह मालूम हुआ कि वे इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) के शागिर्द इमाम मुहम्मद (रह०) हैं तो और ज़्यादा ख़ुश हुए और अपने यहाँ ठहरा लिया। इमाम मुहम्मद (रह०) वहाँ तीन साल रहे और अपनी समझदारी से इमाम मालिक (रह०) को बहुत ख़ुश रखा। इमाम मालिक (रह०) ने जितनी हदीसें जमा की थीं सब की सब उन्होंने इमाम मुहम्मद (रह०) को सौंप दी। इस तरह उन्होंने सात सौ हदीसें उनसे सीखीं। फिर तो इमाम मुहम्मद (रह०) के इल्म और समझदारी की धूम मच गई। उस वक़्त के सारे आलिम मान गए कि इस वक़्त इमाम मुहम्मद (रह०) से बड़ा कोई दूसरा आलिम नहीं।

इमाम साहब को अल्लाह ने जितना बड़ा आलिम बनाया और उनको जितना ज़्यादा इल्म दिया, इमाम साहब ने भी उसको ख़ूब निभाया और दूसरों को ख़ूब पढ़ाया। उनके शागिर्दों में बड़े-बड़े इमाम हुए। इमाम शाफ़ई (रह०) भी उनके शागिर्द थे। इमाम शाफ़ई (रह०) फ़रमाते हैं, "मैंने इमाम साहब से बढ़कर न तो कोई आलिम देखा, न उन जैसा समझदार और न उन जैसा बोलनेवाला। अल्लाह ने उनको जैसा ख़ूबसूरत बनाया था वैसी ही अच्छी उनकी सीरत भी थी।"

इमाम मुहम्मद (रह०) का नाम सुना तो ख़लीफ़ा हारून रशीद

ने उनको अपनी हुकूमत का सबसे बड़ा क़ाज़ी बना दिया। इमाम साहब ने क़ाज़ी होना मंज़ूर कर लिया, लेकिन वे हारून रशीद के यहाँ नौकर की तरह नहीं रहे। बल्कि जब वह उनके यहाँ आता तो ख़ुद इमाम साहब को सलाम करता, ये कभी उसकी ताज़ीम के लिए नहीं उठे ।

एक बार इमाम साहब के पास बहुत से लोग बैठे थे। इतने में वहाँ ख़लीफ़ा हारून अल रशीद आ गया। सब लोग उसकी ताज़ीम के लिए उठे, लेकिन इमाम मुहम्मद (रह०) बैठे रहे। ख़लीफ़ा ने पूछा, "आप मेरी ताज़ीम के लिए क्यों नहीं उठे?" इमाम साहब ने जवाब दिया, "जो शख़्स यह चाहे कि लोग उसकी ताज़ीम करें तो उसको चाहिए कि अपना ठिकाना जहन्नम में बना ले।"

यह सुनकर ख़लीफ़ा ने सर नीचा कर लिया और कुछ दूसरी बातें पूछीं। इमाम साहब ने हर बात का ठीक-ठीक जवाब दिया। ख़लीफ़ा ने ख़ुश होकर एक भारी रक़म इनाम में भेजी। उन्होंने यह सारी रक़म ग़रीबों में बाँट दी।

इमाम साहब के शागिर्दों में जो ग़रीब होता उसे इमाम साहब माल देते, जो क़र्ज़दार होता उसका क़र्ज़ चुका देते। इमाम शाफ़ई (रह०) उनसे बहुत ख़ुश हुए और उन्हें इतनी किताबें दीं कि वे उनको एक ऊँट पर लादकर ले गए।

इमाम साहब ने एक बार इमाम शाफ़ई को क़त्ल होने से बचाया। हुआ यह कि एक बार कुछ लोगों ने ख़लीफ़ा हारून रशीद के ख़िलाफ़ बग़ावत कर दी और उसके ख़िलाफ़ लड़े। फ़ौज ने उनपर धावा बोल दिया और बहुत-से लोगों को पकड़ लिया। न जाने कैसे इमाम शाफ़ई (रह०) भी पकड़े गए। ख़लीफ़ा ने उन सबको क़त्ल करने का हुक्म दिया, लेकिन इमाम मुहम्मद (रह०) ने इमाम शाफ़ई (रह०) को छुड़ा लिया और कहा कि ये बेक़सूर हैं।

इमाम मुहम्मद (रह०) ने बहुत-सी किताबें लिखीं। ये वे किताबें हैं जिनसे आज हमें नमाज़ पढ़ने, रोज़ा रखने, ज़कात देने, हज करने और हराम-हलाल परखने में मदद मिलती है। उन्होंने ऐसी किताबें नौ सौ निन्यानवे

यानी एक कम एक हज़ार लिखीं।

अल्लाह तआला का हमपर बहुत बड़ा एहसान है कि उसने हमारे बुज़ुर्गों में इमाम मुहम्मद (रह०) जैसा बुज़ुर्ग पैदा किया और उन्हें ऐसी समझ, ऐसा इल्म और ऐसा मौक़ा दिया कि उन्होंने हमारे लिए अच्छी-अच्छी किताबें लिखीं जिससे हमारे लिए अल्लाह और अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के हुक्मों पर चलना आसान हो गया। सन् 189 हि० में इमाम मुहम्मद (रह०) अल्लाह को प्यारे हो गए। उस वक़्त उनकी उम्र सत्तावन (57) साल थी। जिसने सुना, उसने इमाम साहब का शोक मनाया और उनके लिए अल्लाह से दुआ की। अल्लाह की लाखों-लाख रहमतें हों इमाम मुहम्मद (रह०) पर और अल्लाह हमें तौफ़ीक़ दे कि हम उन जैसे काम कर सकें।

आमीन !

हज़रत इमाम अबू यूसुफ़ (रह०)

लगभग बारह सौ साल पहले 'कूफ़ा' नामी शहर में एक बूढ़ा आदमी रहता था, जिसका नाम इबराहीम था। बूढ़ा इबराहीम मेहनत-मज़दूरी करके अपना पेट पालता था, बुढ़ापे की वजह से मज़दूरी कम मिलती थी। उसकी बीवी भी सूत कातकर कुछ पैसे कमा लेती थी। लेकिन दोनों की कमाई भी इतनी नहीं होती थी कि घरवाले पेट भरकर खाना खा सकें। बेचारों की हालत यह थी कि सुबह को मिल गया तो शाम को खाने के लिए कुछ न होता और अगर शाम को कुछ खा लिया तो सुबह को सिर्फ़ अल्लाह का नाम होता।

इस बूढ़े इबराहीम का एक लड़का था, जिसका नाम याक़ूब था। याक़ूब दस बरस का हुआ तो बाप ने उसे भी किसी काम पर लगाना चाहा, ताकि कुछ पैसे घर आएँ तो घर की हालत सुधरे। यह बात इबराहीम ने अपनी बीवी से कही तो वह उसे अपने साथ एक धोबी के घर ले गई । धोबी ने याक़ूब को अपने साथ काम पर लगा लिया। याक़ूब नौकर हो गया मगर काम में उसका दिल न लगता था। उसको इल्म हासिल करने का शौक़ था। वह चाहता था कि अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने जो तालीम दुनियावालों को दी है, उसे जाने और ख़ुद जानने के बाद दूसरों को बताए, दुनिया में दीन फैलाए।

इसलिए याक़ूब यह करता कि घर से तो काम पर जाने के लिए निकलता, लेकिन जा पहुँचता एक मदरसे में। मदरसे में एक बहुत बड़े आलिम पढ़ाते थे, जिनका नाम था हज़रत अबू हनीफ़ा (रह०)। अबू हनीफ़ा (रह०) इतने बड़े आलिम थे कि मुसलमानों ने उन्हें अपना इमाम माना था। आज भी हम उनका नाम बड़ी इज़्ज़त से लेते हैं।

अपनी धुन का पक्का याक़ूब हज़रत इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) से सबक़ लेता रहा, अल्लाह और अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की बातें सीखता रहा। इस तरह एक महीना पूरा हुआ। महीना पूरा होने पर माँ-बाप ने याक़ूब

से कहा कि इस महीने की तनख़्वाह लाए? याक़ूब तनख़्वाह कहाँ से लाता, काम पर तो वह गया ही नहीं। आख़िर भेद खुला तो माँ बहुत नाराज़ हुई। लड़के को लेकर इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) के मदरसे में पहुँची और इमाम साहब से कहा, "हज़रत यह मेरा लड़का है। मैं सूत कातकर कमाती हूँ। इसे भी मैंने एक धोबी के यहाँ काम पर लगा दिया था कि कुछ कमाकर घरवालों की मदद करे । लेकिन यह आपके पास चला आता है। इसका बाप बूढ़ा हो चुका है, उससे कुछ काम नहीं होता। आप इसे समझाइए के कुछ कमाए जिससे हम सबकी गुज़र-बसर हो। पढ़-लिखकर यह क्या करेगा?"

यह सुनकर हज़रत अबू हनीफ़ा (रह०) मुस्कुराए, बोले, "इस लड़के को मेरे पास ही छोड़ जा, तू इसे रूखी-सूखी रोटियाँ खिलाना चाहती है और यह पिस्ते-बादाम का फ़ालूदा खाना चाहता है।" इमाम साहब के कहने का मतलब यह था कि तू इसे छोटा आदमी रखना चाहती है और यह बड़ा आदमी बनना चाहता है।

बुढ़िया ने इमाम साहब की बात सुनी तो ख़फ़ा हो गई और बड़बड़ाती चली गई कि बूढ़े की भी मत मारी गई है। इमाम साहब ने याक़ूब के घर के सारे ख़र्चों की ज़िम्मेदारी अपने सर ले ली। उनके कारोबार में अल्लाह ने बड़ी बरकत दी थी। उन्हें कारोबार से जो कुछ मिलता वह सब दीन का इल्म सीखनेवालों पर ख़र्च कर दिया करते थे। आप एक बड़ी रक़म याक़ूब के माँ-बाप को भी देने लगे। मियाँ याक़ूब भी बेफ़िक्र हो गए, इतमीनान और मेहनत से पढ़ने लगे। अल्लाह ने उनको बड़ी अच्छी समझ दी थी, उनकी याद भी बहुत अच्छी थी। जो भी सबक़ मिलता, उसे मेहनत से याद कर लेते। आख़िर एक दिन ऐसा आया कि मियाँ याक़ूब ख़ुद बड़े आलिम हो गए। इतने बड़े आलिम कि हज़रत इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) भी उनपर भरोसा करने लगे। इमाम साहब ने मरने से पहले अपना मदरसा और किताबें अपने जिन दो शागिर्दों को सौंपी उनमें से एक यही याक़ूब मियाँ थे।

इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) के बाद मियाँ याक़ूब का नाम फैला। उस

वक़्त मुसलमानों का ख़लीफ़ा हारून रशीद था। हारून आलिमों की बड़ी इज़्ज़त करता था। उसके ज़माने में मियाँ याक़ूब इमाम अबू यूसुफ़ के नाम से मशहूर हुए। ख़लीफ़ा को इमाम साहब के इल्म का हाल मालूम हुआ तो उसने आपको मुल्क का चीफ़ जस्टिस यानि सबसे बड़ा क़ाज़ी बना दिया। जहाँ-जहाँ इस्लामी हुकूमत थीं यानी इराक़, ख़ुरासान, मिस्र वग़ैरह, वहाँ का क़ाज़ी इमाम अबू यूसुफ़ (रह०) के हुक्म से बनाया जाता।

मियाँ याक़ूब यानी इमाम अबू यूसुफ़ (रह०) का मरतबा इतना बढ़ा कि ख़लीफ़ा हारून ख़ुद उन्हें सलाम करता। उसके दरबार में उनके लिए कोई रोक-टोक न थी। इमाम साहब ख़लीफ़ा को उसकी ग़लती पर टोक दिया करते थे और वह अपनी ग़लती मान लिया करता था। ख़लीफ़ा जब खाना खाता तो इमाम साहब को भी साथ खिलाता।

एक दिन ख़लीफ़ा के सामने पिस्ते-बादाम का फ़ालूदा आया। ख़लीफ़ा ने यह फ़ालूदा इमाम साहब के सामने बढ़ा दिया। फ़ालूदा देखकर इमाम अबू यूसुफ़ (रह०) की आँखों में आँसू आ गए। ख़लीफ़ा ने इन आँसुओं की वजह पूछी तो कहा, "बरसों पहले मेरी माँ ने मुझे एक धोबी के घर नौकर रख दिया था..." और फिर इमाम साहब ने ख़लीफ़ा को अपने बचपन की पूरी कहानी सुनाई। फिर फ़रमाया, "हमारे उस्ताद हज़रत इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) ने जो कुछ फ़रमाया था, ठीक निकला। आप देखते हैं कि पिस्ते-बादाम का फ़ालूदा मेरे सामने रखा है।"

इमाम अबू यूसुफ़ (रह०) की आप-बीती सुनकर ख़लीफ़ा पर बड़ा असर हुआ। उसने कहा, "ख़ुदा की क़सम ! इल्म से दोनों जहान में इज़्ज़त है।"

हज़रत इमाम जाफ़र सादिक़ (रह०)

मनसूर अब्बासी बहुत बड़ा बादशाह था, उसे अपनी बादशाहत पर बहुत ज़्यादा ग़ुरूर था। एक दिन मनसूर अब्बासी दरबार में बैठा था। उसके बड़े-बड़े वज़ीर और अमीर आस-पास बैठे हुए थे। कुछ आलिम भी दरबार में मौजूद थे। मनसूर बढ़-चढ़कर बातें कर रहा था कि इतने में एक मक्खी कहीं से आकर उसके चेहरे पर बैठ गई। मनसूर ने हाथ के इशारे से उसे उड़ा दिया । मक्खी आकर फिर उसी जगह बैठ गई। मनसूर ने फिर उड़ा दिया। मक्खी तो होती ही है बड़ी ज़िद्दी, फिर आकर वहीं बैठ गई। मनसूर ने फिर उड़ा दिया। अब मक्खी बार-बार आकर उसी जगह बैठती रही और मनसूर बार-बार उसे उड़ाता रहा। आख़िर में झुंझला गया। उसने चाहा कि मक्खी को मार डाले, मगर दरबार में सबके सामने मक्खी मारना नहीं चाहता था। उसने दरबार में मौजूद एक आलिम से पूछा, "हज़रत भला बताइए तो अल्लाह ने मक्खी को क्यों पैदा किया?" "घमण्डी का घमण्ड तोड़ने के लिए।" आलिम साहब ने जवाब दिया। यह सच्ची और खरी बात सुनकर मनसूर ख़ामोश हो गया।

आप समझे कि यह आलिम साहब कौन थे? यह हमारे और आपके बहुत बड़े बुज़ुर्ग हज़रत इमाम जाफ़र सादिक़ (रह०) थे। प्यारे नबी (सल्ल०) के दामाद हज़रत अली (रज़ि०) के पोते। इन्हें सब लोग सादिक़ के नाम से पुकारते थे। सादिक़ के मानी हैं सच्चा, बहुत बड़ा सच्चा। हज़रत इमाम जाफ़र सादिक़ (रह०) सच बोलने में किसी से नहीं डरते थे, उनको सिर्फ़ ख़ुदा का डर था और बस! आप अपने वक़्त के सबसे बड़े आलिम थे। क़ुरआन और हदीस का पूरा इल्म आपको था। आपने क़ुरआन और हदीस का इल्म प्यारे नबी (सल्ल०) के प्यारे साथियों यानी सहाबा (रज़ि०) से सीखा था। फिर आप ख़ुद दूसरों को दीन का इल्म सिखाने लगे। आपके शागिर्दों में बड़े-बड़े मशहूर लोग हुए हैं। हज़रत इमाम मालिक (रह०), हज़रत इमाम अबू हनीफ़ा (रह०), हज़रत इमाम सुफ़ियान सौरी और ऐसे

ही बहुत से इमाम और आलिम आपके शागिर्द थे।

अल्लाह की रहमत हो उनपर और अल्लाह हमें उनकी बताई हुई बातों को सीखने और उनपर अमल करने की तौफ़ीक़ दे।

आमीन!

हज़रत आमिर बिन शुरहबील (रह०)

ख़लीफ़ा अब्दुल मलिक बड़ा मशहूर ख़लीफ़ा गुज़रा है । वह ख़ुद भी एक बड़ा आलिम था, इतना बड़ा आलिम कि अगर वह बादशाह होकर हज्जाज जैसे ज़ालिम अमीर की सरपरस्ती न करता तो हम उसे अपना बुज़ुर्ग मानते । आलिम होने के साथ वह निहायत समझदार भी था । उसकी समझदारी का एक दिलचस्प क़िस्सा सुनिए :

एक बार ख़लीफ़ा अब्दुल मलिक ने एक आलिम को रोम के बादशाह के पास भेजा । आलिम साहब रोम के बादशाह के दरबार में गए । बादशाह से मिले, उससे बात-चीत हुई । बादशाह ने उनसे तरह-तरह के सवालात किए, ऐसी-ऐसी बातें पूछीं कि दूसरा जवाब न दे सके । लेकिन इन आलिम साहब ने तमाम सवालों के जवाब बड़ी अच्छी तरह दिए । बादशाह उनकी बातें सुनकर दंग रह गया । उसने आलिम साहब से पूछा, "क्या तुम शाही घराने के हो ?" उन्होंने जवाब दिया, "नहीं, मैं तो जैसे और मुसलमान हैं वैसा ही एक आम आदमी हूँ ।"

यह सुनकर बादशाह ने चुपके से कुछ कहा, जिसे कोई सुन न सका । उसने एक ख़त लिखा, ख़त को लिफ़ाफ़े में बंद किया और लिफ़ाफ़ा आलिम साहब को देकर बोला, "यह ख़त अपने बादशाह को दे देना ।"

उन्होंने वापस आकर लिफ़ाफ़ा अब्दुल मलिक को दिया । उसने खोलकर ख़त पढ़ा और आलिम साहब से पूछा, "क्या तुम्हारी बादशाह से कुछ बातचीत भी हुई थी ?" उन्होंने सारा हाल कह सुनाया । अब अब्दुल मलिक ने आलिम साहब के हाथ में ख़त थमा दिया कि पढ़ें । उन्होंने पढ़ा तो ख़त में लिखा था : "बड़े ताज्जुब की बात है कि जिस क़ौम में ऐसा आदमी हो और वह क़ौम उसे छोड़कर किसी और को अपन बादशाह बना ले ।"

आलिम साहब ने यह पढ़ा तो दिल में खटके कि कहीं अब्दुल मलिव उन्हें क़त्ल न करा दे । उन्होंने उससे कहा, "ऐ ख़लीफ़ा ! अगर रोम क

बादशाह आपको देख लेता तो इस तरह न लिखता और अगर मैंने यह ख़त पढ़ लिया होता तो आपको न देता ।"

ख़लीफ़ा अब्दुल मलिक ने कहा, "दरअसल उसने मुझको इशारा किया है कि मैं आपको क़त्ल कर दूँ ताकि ऐसा न हो कि आगे चलकर मेरी रिआया आपको चाहने लगे और फिर बाग़ी होकर आपको बादशाह बना ले ।"

रोम के बादशाह के जो लोग ख़लीफ़ा के दरबार में थे, उन्होंने यह बातचीत अपने बादशाह को लिख भेजी । उसने कहा, "हाँ, मेरा इशारा यही था ।"

अब सुनिए कि यह आलिम साहब कौन थे । यह बुज़ुर्ग हज़रत आमिर बिन शुरहबील शोबी (रह०) थे जो इमाम शोबी के नाम से मशहूर हैं । वे प्यारे रसूल (सल्ल०) के प्यारे सहाबा (रज़ि०) के निहायत प्यारे शागिर्द थे । उन्होंने पाँच सौ सहाबा से दीन का इल्म सीखा, हदीसें सुनीं और दीन की एक-एक बात समझी । इल्म हासिल करने के लिए दूर-दूर गए । जहाँ सुना कि फ़लाँ जगह कोई सहाबी रहते हैं, फ़ौरन वहाँ पहुँच गए । उस वक़्त के सबसे बड़े हदीस के इमाम हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि०) के पास क़रीब एक साल रहे ।

यह तो बात हुई उनकी मेहनत की । उनपर अल्लाह की मेहरबानी यह भी थी कि अल्लाह ने उनको समझ बड़ी अच्छी दी थी । अल्लाह के फ़ज़्ल से उनके बात करने का ढंग भी बहुत दिलकश था । वे हर बात इतनी साफ़ और सुलझी हुई करते कि सुननेवाला अच्छी तरह समझ लेता और उनकी समझदारी और क़ाबिलियत पर हैरान रह जाता । इसी वजह से उस वक़्त का ख़लीफ़ा अब्दुल मलिक उन्हें बहुत मानता था । हज्जाज बिन यूसुफ़ बड़ा ज़ालिम हाकिम था, लेकिन वह भी हज़रत आमिर बिन शुरहबील शोबी (रह०) की समझदारी का क़ायल था और उनकी इज़्ज़त करता था ।

ख़लीफ़ा अब्दुल मलिक को जब किसी दूसरे बादशाह से कोई मामला सुलझाना होता तो वह इमाम शोबी को भेजा करता था और आप वहाँ

से मामला ठीक करके वापस आते थे । यही वे इमाम शोबी (रह०) हैं जिनकी नसीहत सुनकर हज़रत इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) ने तालीम की तरफ़ तवज्जोह की और फिर फ़िक़्ह के बहुत बड़े आलिम हुए । अल्लाह की रहमत हो उनपर और अल्लाह हमें भी ऐसी ही समझ दे ।

आमीन !

हज़रत रबीआ (रह०)

मदीना शरीफ़ में एक बुज़ुर्ग रहते थे, जिनका नाम अबू अब्दुर्रहमान फ़रोख़ था। वे एक बहादुर सिपाही थे। उनको जिहाद का बड़ा शौक़ था। एक बार जिहाद के लिए निकले तो पूरे सत्ताइस साल बाद घर वापस लौटे। वे जाते वक़्त अपनी बीवी को तीस हज़ार दीनार दे गए थे। उनके जाने के दो-तीन महीने बाद उनके यहाँ लड़का पैदा हुआ। अबू अब्दुर्रहमान फ़रोख़ की बीवी बड़ी समझदार थीं। उन्होंने बेटे को बड़ी अच्छी तरह पाला-पोसा। वे बेटे को हमेशा साफ़-सुथरा रखतीं, वक़्त पर खाना खिलातीं, वक़्त पर सुलातीं और बचपन से ही नमाज़ का शौक़ दिलातीं। बेटा जब बोलने लगा तो उसे कलमा पढ़ना सिखाया, नमाज़ सिखाई और उसके पढ़ने का इन्तिज़ाम किया। बड़े अच्छे-अच्छे उस्तादों के पास पढ़ने के लिए भेजा। उस वक़्त ऐसे लोग बहुत ज़्यादा थे, जिन्होंने प्यारे रसूल (सल्ल०) के सहाबा किराम से क़ुरआन और सुन्नत की बातें सीखी थीं। अल्लाह की मेहरबानी से लड़का भी बड़ा समझदार निकला। वह सदा माँ का कहना मानता, शौक़ से पढ़ता, सबक़ याद रखता। थोड़े ही दिनों में उसने क़ुरआन भी पढ़ लिया, हदीसें भी पढ़ लीं और यह भी जान लिया कि प्यारे नबी (सल्ल०) हर काम किस तरह किया करते थे। सत्ताइस बरस की उम्र में वे अपने ज़माने के सारे आलिमों से बड़े आलिम हो गए। सब लोग उनकी इज़्ज़त करते थे। बड़े-बड़े इमाम उनके शागिर्द हुए। यहाँ तक कि हज़रत इमाम मालिक (रह०) और इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) भी उनके शागिर्द थे।

मदीना शरीफ़ में यह नेक समझदार और आलिम-फ़ाज़िल जवान बड़े-बड़ों का उस्ताद बना और उधर सत्ताइस साल बाद अबू अब्दुर्रहमान फ़रोख़ जिहाद से लौटे तो बूढ़े हो चुके थे। घर के दरवाज़े पर आए और आवाज़ दी। उस वक़्त उनका आलिम-फ़ाज़िल जवान बेटा घर में मौजूद था, वह बाहर आया अबू अब्दुर्रहमान बेटे को क्या पहचानते, वह तो उनके जाने

के दो-तीन महीने बाद पैदा हुआ था, इसलिए कभी देखने का सवाल ही न था। एक जवान आदमी को अपने घर से निकलते देखा तो फ़रोख़ साहब बहुत बिगड़े। हाथ पकड़ा और पूछा, "तू कौन है जो मेरे घर का मालिक बन बैठा है ?" यह कहकर ख़ुद घर में जाने लगे तो अब बेटे ने रोका, "बड़े मियाँ, आप कौन हैं जो इस बेबाकी से मेरे घर में घुसे जा रहे हैं ?"

कैसे मज़े की बात है ! बेटा बाप को घर में जाने से रोक रहा था और कह रहा था, "बड़े मियाँ ज़रा अक़्ल से काम लीजिए। क्यों पराए घर में घुसे जा रहे हैं आप !" और बाप बेटे से कह रहा था, "अरे तू कौन है जो मेरे घर पर क़बज़ा जमाए हुए है। चल, मैं तुझको क़ाज़ी के पास ले चलूँगा और तुझपर मुक़दमा दायर करूँगा, तुझे सज़ा दिलाकर जेल में सड़ाऊँगा।"

दोनों में झगड़ा बढ़ा तो आसपास के लोग आ गए। हज़रत इमाम मालिक (रह०) ने सुना तो वे भी दौड़े आए, और भी बहुत-से आलिम-फ़ाज़िल लोग वहाँ इकट्ठे हो गए और अपने उस्ताद के तरफ़दार हो गए। हज़रत इमाम मालिक (रह०) ने फ़रोख़ साहब से कहा, "जनाब आपको मकान की ज़रूरत है तो कहीं और ठहर जाइए, किसी दूसरे के घर पर क़बज़ा करना ठीक नहीं। इमाम मालिक (रह०) की बात सुनकर फ़रोख़ साहब ने कहा, "वाह साहब, दूसरे का घर क्या मतलब ? यह घर मेरा है और मेरा नाम अबू अब्दुर्रहमान फ़रोख़ है।"

अबू अब्दुर्रहमान फ़रोख़ की बीवी घर के अन्दर इस झगड़े की वजह से परेशान हो रही थीं। अबू अब्दुर्रहमान फ़रोख़ का नाम सुना तो बाहर आईं, फ़रोख़ साहब को ग़ौर से देखा, पहचान लिया और सबसे कहा, "हाँ सचमुच यह अबू अब्दुर्रहमान ही हैं।" फिर बेटे से कहा, "बेटे, यह तुम्हारे बाप हैं।"

अब क्या था, सब लोग ख़ुश हो गए और ख़ुश-ख़ुश अपने घरों को वापस चले गए। बाप ने बेटे को गले लगाया। बेटे ने बाप को बड़ी इज़्ज़त के साथ घर में बिठाया और ख़ातिर करने लगा। फ़रोख़ साहब

काफ़ी थके हुए थे, खाना खाकर लेटे और सो गए । जागे तो बीवी से बातें करते हुए पूछा, "जिहाद को जाते हुए मैं तुमको तीस हज़ार दीनार दे गया था, वे हैं या ख़र्च कर डाले ?" बीवी ने कहा, "घबराओ नहीं, वह रक़म मैंने बड़े नफ़े के काम में लगा रखी है ।" फ़रोख़ बोले, "कहाँ !" जवाब दिया, "देखो नमाज़ का वक़्त हो गया है, जाओ नमाज़ पढ़ आओ फिर बताऊँगी ।"

फ़रोख़ साहब नमाज़ के लिए मस्जिद में गए, नमाज़ पढ़ी । नमाज़ के बाद सब लोग क़ायदे और अदब के साथ एक तरफ़ बैठ गए । फ़रोख़ साहब भी एक तरफ़ बैठ गए । अब शुरू हुआ क़ुरआन और हदीस का दर्स । दर्स देनेवाले वही फ़रोख़ साहब के आलिम-फ़ाज़िल जवान बेटे थे और दर्स सुननेवालों में हज़रत इमाम मालिक (रह०) हज़रत हसन बिन ज़ैद (रह०) और इब्ने अबी अली (रह०) और ऐसे ही दूसरे बड़े-बड़े बुज़ुर्ग थे । फ़रोख़ अदब से सर झुकाए बैठे थे, दर्स सुन रहे थे और ताज्जुब कर रहे थे कि अल्लाह ने इस जवान को ऐसा इल्म अता फ़रमाया कि इसके दर्स में ऐसे-ऐसे बुज़ुर्ग शरीक हैं ।

दर्स में किसी शागिर्द ने सवाल कर दिया तो सब लोग फ़ाज़िल उस्ताद की तरफ़ देखने लगे । फ़रोख़ साहब भी देखने लगे । अब जो देखा तो पहचाना कि यह तो मेरा ही बेटा है । मगर फिर सोचा, "शायद पहचानने में भूल हो गई, मेरे बेटे ने क्या पढ़ा-लिखा होगा ?" फ़रोख़ इसी सोच में रहे फिर सब्र न हुआ तो किसी से पूछा, "यह फ़ाज़िल नौजवान कौन है ?" जवाब मिला, "यह रबीआ बिन अबू अब्दुर्रहमान फ़रोख़ हैं ।"

"यानी मेरा ही बेटा है !" फ़रोख़ साहब ख़ुशी के मारे फूले न समाए बोले, "यह सब मेरे अल्लाह की मेहरबानी है । उसने मेरे बेटे को यह बड़ाई दी ।" घर आए तो बीवी से कहा, "मैंने तुम्हारे बेटे को इस शान से देखा है कि बड़े से बड़े आलिम को नहीं देखा ।"

अब बीवी ने कहा, "बताइए आपको क्या चीज़ पसन्द है ? वे तीस हज़ार दीनार या यह बड़ाई ? मैंने वह सारी रक़म बेटे की इसी पढ़ाई में ख़र्च कर डाली ।" फ़रोख़ ने जवाब दिया, "ख़ुदा की क़सम ! मुझे यह

पसन्द है कि मेरा बेटा दीन का इतना बड़ा आलिम हुआ । तुमने वह रक़म बहुत ठीक जगह ख़र्च की ।"

है न मज़ेदार क़िस्सा । आप समझ ही गए होंगे कि हमारे, आपके नामवर बुज़ुर्ग हज़रत रबीआ (रह०) यही हैं । अब इनका कुछ और हाल सुनिए :—

हज़रत रबीआ (रह०) के ज़माने में अबुल अब्बास सफ़्फ़ाह बहुत बड़ा बादशाह था । बादशाह ने हज़रत रबीआ (रह०) के इल्मो फ़ज़्ल का हाल सुना तो किसी बहाने से बुलाया और अपने मुल्क का चीफ़ जस्टिस यानी सबसे बड़ा क़ाज़ी बनाना चाहा । लेकिन हज़रत रबीआ (रह०) उसकी कुछ बुरी बातों की वजह से उससे बहुत ख़फ़ा थे । सफ़्फ़ाह ने उनको बड़ा लालच दिया, हज़ारों-लाखों की रक़म पेश की, लेकिन हज़रत रबीआ (रह०) न माने । अल्लाह ने उन्हें बहुत कुछ दे रखा था । उन्होंने अपनी सारी रक़म अपने शागिर्दों पर ख़र्च कर दी । वे अपने शागिर्दों को मुट्ठी भर-भरकर देते थे, उनकी सारी ज़रूरतें पूरी करते थे । ये सब वे इसलिए करते कि शागिर्द इतमीनान के साथ दीन का इल्म हासिल कर सकें । हज़रत रबीआ (रह०) अपने शागिर्दों को तो देते ही थे, वैसे भी बहुत ख़ैरात करते रहते थे । वे इतनी ज़्यादा ख़ैरात करते कि कभी-कभी क़र्ज़दार भी हो जाते थे ।

हज़रत रबीआ (रह०) में और भी बहुत-सी अच्छाइयाँ थीं । इन अच्छाइयों की वजह से मुसलमान उनको अपना बहुत बड़ा बुज़ुर्ग मानते थे और मानते हैं । क़ुरआन में भी बड़ा और शरीफ़ आदमी ऐसे ही लोगों को कहा गया है । क़ुरआन में है कि अल्लाह के नज़दीक शरीफ़ और बुज़ुर्ग वह है जो सबसे ज़्यादा मुत्तक़ी हो यानी अल्लाह की नाफ़रमानी के डर से बुरी बातों से डरता और बचता हो । हज़रत रबीआ (रह०) ऐसे ही मुत्तक़ी थे । अल्लाह उनपर अपनी रहमत नाज़िल फ़रमाए ! आमीन

हज़रत अब्दुल्लाह बिन मुबारक (रह०)

ईरान एक मशहूर मुल्क है जो हमारे मुल्क के उत्तर-पश्चिम में है। ईरान के सूबे ख़ुरासान में 'मर्व'' नामी शहर में 'बनू हंज़ला' ख़ानदान आबाद था जिसकी मिलकियत में एक बड़ा बाग़ था। इस बाग़ की रखवाली मुबारक नामी एक ग़ुलाम करता था।

मुबारक कहने के लिए तो ग़ुलाम थे, लेकिन थे बड़े अच्छे आदमी—बड़े नमाज़ी, परहेज़गार, बुरी बातों से बचनेवाले, सच्चे और ईमानदार। उनकी ईमानदारी के बारे में एक क़िस्सा बहुत-ही मशहूर है, वह सुनिए और याद रखिए कि जब कभी आपके सामने ऐसी ही कोई बात आए तो आप भी ऐसा ही कीजिए जैसाकि मुबारक ने किया।

मुबारक जिस बाग़ की रखवाली करते थे उसके मालिक ने एक दिन उनसे एक खट्टा अनार माँगा। मुबारक बाग़ में गए और एक अनार तोड़ लाए, मालिक को पेश किया। मालिक ने वह अनार चखा तो वह मीठा निकला। मालिक को बड़ा ग़ुस्सा आया, डाँटकर बोला, "तुम इतने दिनों से बाग़ की रखवाली कर रहे हो और अभी तक खट्टे-मीठे अनार की तमीज़ नहीं।"

वे बोले, "जी हाँ, मुझे नहीं मालूम कि कौन-सा अनार मीठा है और कौन-सा खट्टा।" मालिक ने पूछा, "तो क्या तुमने इस बाग़ का कोई अनार नहीं खाया ?" बोले, "जी नहीं।" मालिक ने फिर कहा, "क्यों ?" उन्होंने जवाब दिया, "आपने मुझे इस बाग़ की रखवाली करने के लिए रखा था। अनार खाने का हुक्म नहीं दिया था। अब अगर मैं अनार खाता तो यह चोरी होती।"

मालिक यह सुनकर हैरान रह गया कि कैसा नेक, सच्चा और ईमानदार है यह ग़ुलाम ! इस बात पर वह बहुत ख़ुश था। बाग़ से घर वापस गया तो घरवालों से मुबारक की ईमानदारी की बात बताई। घरवाले भी यह सुनकर ख़ुश हुए। ख़ुश होने की वजह यह थी कि वे ख़ुद भी बड़े

नेक और ईमानदार लोग थे ।

अब सुनिए, इसी बाग़ के मालिक की एक लड़की थी । यह लड़की भी, जो शादी के लायक़ हो चुकी थी, बहुत अच्छी थी । उसकी शादी के बारे में मालिक ने मुबारक मियाँ से राय ली कि कहाँ और किसके साथ करनी चाहिए ।

मुबारक मियाँ को शादी के बारे में प्यारे रसूल (सल्ल०) की एक बहुत प्यारी हदीस याद थी, जिसमें प्यारे रसूल (सल्ल०) ने मुसलमानों को नसीहत की थी कि शादी करने के लिए मालदारी, ऊँचा ख़ानदान या ख़ूबसूरती न देखो, बल्कि यह देखो कि जिससे शादी कर रहे हो वह नेक, अल्लाह से डरनेवाला और दीनदार हो । यही बात मुबारक ने मालिक से कही ।

मालिक और उसके ख़ानदान के लोग दीनदार थे, उनको यह बात पसन्द आई । और पसन्द क्यों न आती, प्यारे रसूल (सल्ल०) की नसीहत हर सच्चे मुसलमान को पसन्द आती है । मालिक को यह बात पसन्द आई तो उसने अपनी बीवी से कहा कि हमारी बेटी के लिए मुबारक से अच्छा शौहर नहीं मिल सकता । बीवी ने भी कहा, "बेशक, मुबारक बड़ा ईमानदार और अल्लाह से डरनेवाला है । वह अल्लाह के हुक्मों के मुताबिक़ बीवी से सुलूक करेगा और इसी में लड़की के लिए भलाई है ।"

इस बातचीत के बाद मालिक ने अपनी बेटी की शादी मुबारक साहब के साथ कर दी । मालिक ने यह नहीं देखा कि मुबारक मियाँ ग़ुलाम हैं, ग़रीब हैं, ख़ानदान कोई ऊँचा नहीं, न वे बहुत ख़ूबसूरत ही हैं । देखा तो बस यह कि मुबारक मियाँ सच्चे मुसलमान और पक्के दीनदार हैं ।

अब देखिए, मियाँ भी नेक और ईमानदार, बीवी भी पक्की मुसलमान और अल्लाह से डरनेवाली— तो अल्लाह की मेहरबानी यह हुई कि अल्लाह ने उनको एक बड़ा अच्छा बच्चा अता फ़रमाया । यानी उनके घर ऐसा बच्चा पैदा हुआ जो बड़ा होकर अपने वक़्त का सबसे बड़ा आलिम हुआ और उसने अल्लाह के दीन (इस्लाम) का नाम ऊँचा किया । उस बच्चे का नाम अब्दुल्लाह था । हज़रत अब्दुल्लाह सन् 118 हि० में पैदा हुए, उस ज़माने में प्यारे रसूल (सल्ल०) के प्यारे सहाबा (रज़ि०) सहाबा (रज़ि०)

के शागिर्द और उन्हें देखनेवाले ज़िन्दा थे । सहाबा किराम के शागिर्दों को ताबई कहा जाता है । इनमें बहुत बड़े-बड़े इमाम यानी क़ुरआन और हदीस के बहुत बड़े आलिम गुज़रे हैं ।

हज़रत अब्दुल्लाह बिन मुबारक (रह०) को क़ुरआन और हदीस का इल्म सीखने का बड़ा शौक़ था और अल्लाह ने उनको समझ भी बहुत अच्छी दी थी । उन्हें हर बात बहुत जल्द याद हो जाती थी और फिर वे उसे भूलते न थे ।

एक बार एक आलिम की तक़रीर सुनने गए तो पूरी तक़रीर याद कर ली और लोगों के कहने पर पूरी तक़रीर ठीक-ठीक सुना दी, एक लफ़्ज़ भी न चूके । लोग सुनकर दंग रह गए । यह सब अल्लाह की मेहरबानी है, जिसे चाहे इज़्ज़त दे । हज़रत अब्दुल्लाह पर अल्लाह तआला की मेहरबानी ही तो थी कि वे थोड़े ही दिनों में बहुत बड़े आलिम हो गए और दूर-दूर तक उनका चर्चा फैल गया । वह जहाँ भी जाते लोग उनकी इज़्ज़त करते और सर-आँखों पर बिठाते ।

हज़रत अब्दुल्लाह बिन मुबारक के उस्ताद भी उनकी बड़ी इज़्ज़त करते थे ।

हज़रत अब्दुल्लाह (रह०) के एक उस्ताद थे हज़रत सुफ़ियान सौरी (रह०) । एक ख़ुरासानी ने हज़रत सुफ़ियान (रह०) से क़ुरआन व हदीस की कोई बात पूछी । उन्होंने फ़रमाया, "तुम्हारे यहाँ ख़ुरासान में सबसे बड़ा आलिम मौजूद है और तुम यहाँ मुझसे पूछने आए हो ।" उसने फिर पूछा, "हमारे यहाँ ख़ुरासान में वह कौन आलिम हैं, उनका नाम क्या है ?" फ़रमाया, "अब्दुल्लाह बिन मुबारक—आजकल उनसे बढ़कर कोई आलिम नहीं ।"

हज़रत इमाम मालिक (रह०) भी हज़रत अब्दुल्लाह (रह०) के उस्ताद थे, वे भी उनको बड़ा आलिम मानते थे और उनकी तारीफ़ किया करते थे । सभी लोग उनकी इज़्ज़त करते थे ।

लोग अब्दुल्लाह बिन मुबारक (रह०) की बादशाह से भी बढ़कर इज़्ज़त करते थे । एक बार वे शहर 'रिक़्क़ा' गए । वहाँ उन दिनों ख़लीफ़ा हारून

रशीद जो एक बहुत बड़ा बादशाह था, ठहरा हुआ था । बादशाह अपनी बेगम के साथ महल के एक कमरे में बैठा हुआ बाहर मैदान की तरफ़ देख रहा था । अचानक देखा कि लोग एक तरफ़ भागे जा रहे हैं और भीड़ इतनी ज़्यादा है कि ख़त्म ही नहीं होती । बेगम ने पूछा कि आख़िर इतनी भीड़ क्यों है और सब लोग कहाँ भागे जा रहे हैं ? जवाब मिला कि ख़ुरासान के सबसे बड़े आलिम हज़रत अब्दुल्लाह बिन मुबारक (रह०) आ रहे हैं इसलिए लोग उन्हें लेने शहर से बाहर जा रहे हैं । बेगम ने सुना तो बोलीं, "सच पूछो तो बादशाह ये हैं । भला हारून रशीद क्या बादशाह हैं जो पुलिस और सिपाहियों के बग़ैर लोगों को जमा नहीं कर सकते ।"

हज़रत अब्दुल्लाह बिन मुबारक (रह०) इतने बड़े आलिम थे, लेकिन उन्होंने अपने इल्म से रुपया-पैसा नहीं बटोरा और न ही इल्म के बदले में कोई रक़म ली । वे कपड़ों की तिजारत करते थे और इसमें उन्हें बड़ा नफ़ा होता था । लेकिन वे यह रक़म अपने ऊपर ख़र्च नहीं करते थे बल्कि ग़रीबों, बेकसों, यतीम बच्चों और क़ुरआन व हदीस का इल्म सीखनेवालों पर ख़र्च कर दिया करते थे । इल्म सीखनेवालों को वे बहुत ज़्यादा देते थे, इसलिए कि वे अपनी ज़रूरतें पूरी करने के लिए इधर-उधर न जाएँ और जी लगाकर पढ़ें ।

क़र्ज़दारों का क़र्ज़ अदा करा देने का बड़ा सवाब है । प्यारे रसूल (सल्ल०) ने इस तरफ़ मालदार मुसलमानों का ध्यान दिलाया है । हज़रत अब्दुल्लाह बिन मुबारक (रह०) क़र्ज़दारों का क़र्ज़ अपने पास से अदा कर दिया करते थे । एक बार किसी ने कहा कि सात सौ का क़र्ज़दार हूँ तो उन्होंने उसे सात हज़ार दे दिए ।

एक बार उनके एक शागिर्द पर भारी क़र्ज़ हो गया और वह बेचारा अदा न कर सका तो उसे जेल भिजवा दिया गया । हज़रत अब्दुल्लाह (रह०) को मालूम हुआ तो दस हज़ार भेजे और झट वहाँ से चल दिए । शागिर्द बेचारे को मालूम भी न हो सका कि किसने क़र्ज़ अदा करके उसे छुड़ाया ।

असल बात यह थी कि हज़रत अब्दुल्लाह नाम के लिए यह सब नहीं करते थे, बल्कि अल्लाह की ख़ुशी के लिए करते थे । इसी लिए वे चाहते थे कि उनकी नेकी कोई जान न सके । मगर वह छुपती न थी । उनको जिहाद का भी बड़ा शौक़ था । एक बार एक जिहाद में शरीक हुए । दुश्मनों से बड़ी बहादुरी के साथ लड़े । उनके तीन बड़े-बड़े बहादुरों को ललकारकर क़त्ल किया, लेकिन इस तरह कि अपना चेहरा छुपाए हुए थे । देखनेवाले हैरान थे कि यह कौन बहादुर है । आख़िर एक आदमी ने बढ़कर चादर खींच ली, चेहरा खुला तो लोगों को पता चला कि हज़रत अब्दुल्लाह इब्ने मुबारक (रह०) हैं ।

हज़रत अब्दुल्लाह (रह०) इतने बड़े आलिम थे और इतने बहादुर थे कि सब लोग उनकी इज़्ज़त करते थे, उनमें घमण्ड नाम को भी न था । अगर कोई उनके सामने उनकी तारीफ़ करता तो बहुत बुरा मानते और उसे चुप कर देते थे ।

हज़रत अब्दुल्लाह बिन मुबारक (रह०) ने 63 साल की उम्र पाई । इतनी ही उम्र हमारे प्यारे नबी (सल्ल०) की हुई थी । इसपर लोगों ने बड़े पते की बात कही । कहा कि हज़रत अब्दुल्लाह (रह०) प्यारे रसूल (सल्ल०) की हर बात पर अमल करते थे, इसलिए अल्लाह ने उम्र भी उतनी ही दी ।

हज़रत अब्दुल्लाह बिन मुबारक (रह०) 13 रमज़ान सन् 181 हि० को अल्लाह को प्यारे हो गए । जिसने भी सुना उसको बड़ा दुख और रंज हुआ ।

ख़लीफ़ा हारून रशीद को मालूम हुआ तो उसपर भी बड़ा असर हुआ। उसने कहा, "अफ़सोस, आलिमों के सरदार का इंतिक़ाल हो गया ।" हज़रत अब्दुल्लाह बिन मुबारक (रह०) के शागिर्दों में बड़े-बड़े आलिम और इमाम हुए । इनमें इमाम अहमद बिन हंबल (रह०) यहया बिन मुईन (रह०), अबू बक्र बिन शीबा (रह०), हब्बान बिन मूसा (रह०) और अब्दुर्रहमान बिन मेहदी (रह०) बहुत ज़्यादा मशहूर हुए । अल्लाह तआला हमें उनके जैसा काम करने की ताक़त अता फ़रमाए । आमीन !

हज़रत रबीअ बिन ख़सीम (रह०)

प्यारे रसूल (सल्ल०) के प्यारे सहाबा (रज़ि०) के शागिर्दों यानी ताबईन में से एक बुज़ुर्ग थे जिनका नाम था 'रबीअ बिन ख़सीम' । वे इतने नेक और बुज़ुर्ग इनसान थे कि उनके बारे में सहाबा (रज़ि०) का कहना था कि अगर प्यारे रसूल (सल्ल०) हज़रत रबीअ (रह०) को देखते तो उनसे मुहब्बत करते ।

इस बात से हम समझ सकते हैं कि हज़रत रबीअ (रह०) कितने अच्छे इनसान थे । उन्होंने बड़ी मेहनत से क़ुरआन पढ़ा, हदीसें याद कीं और फिर जो कुछ पढ़ा उसपर अमल किया । वे हर वक़्त इस बात का ख़याल रखते थे कि कोई बात, कोई काम अल्लाह और अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के हुक्म के ख़िलाफ़ न हो जाए । वे अल्लाह की इबादत बड़े ध्यान से करते और अल्लाह के बंदों की ख़िदमत भी जी लगाकर करते । अल्लाह के बंदों की ख़िदमतवाली एक बात हम नीचे लिखते हैं जो बड़ी दिलचस्प और नसीहतवाली है । लीजिए आप भी पढ़िए—

एक बार हज़रत रबीअ (रह०) की बीवी ने कोई ख़ास चीज़ पकाई और उनके आगे ला रखी कि वे भी उसका मज़ा लें । हज़रत रबीअ (रह०) ने लज़ीज़ खाना सामने देखा तो खाने की बड़ी तारीफ़ की । कई बार अलहम्दुलिल्लाह, अलहम्दुलिल्लाह कहा, फिर खाना उठाया और पड़ोस में ले गए । पड़ोस में एक दीवाना रहता था । उसे खिला दिया । फिर उसका मुँह-हाथ धुलाकर लौट आए । बीवी ने कहा, "वाह ! यह ख़ूब रही । मैंने खाना आपके लिए पकाया और आप उसे एक पागल आदमी को खिला आए जो यह भी नहीं जानता कि उसने क्या खाया ।" हज़रत रबीअ (रह०) ने जवाब दिया, "ख़ुदा तो जानता है ।"

वाह ! कैसा अच्छा काम किया और कैसा अच्छा जवाब दिया ! मतलब यह कि ख़ुदा तो जानता है, उसी से तो सवाब लेना है । ग़ौर कीजिए, इसमें हमारे लिए कैसी अच्छी नसीहत है । अगर हम भी सब काम ख़ुदा

को ही ख़ुश करने के लिए करें तो वह हमसे बहुत ख़ुश होगा और अल्लाह की ख़ुशी ही हम मुसलमानों के लिए सबसे बड़ी चीज़ है । अल्लाह हमें इसकी तौफ़ीक़ दे ।

आमीन !

हज़रत सफ़वान (रह०)

प्यारे रसूल (सल्ल०) के प्यारे साथियों के शागिर्दों में एक बुज़ुर्ग हुए हैं, जिनका नाम सफ़वान बिन सलीम ज़ुहरी था । ये मदीने शरीफ़ के रहनेवाले थे ।

हज़रत सफ़वान (रह०) अल्लाह से बहुत ही डरनेवाले थे । इनको नमाज़ का बड़ा शौक़ था । बड़े परहेज़गार बुज़ुर्ग थे । बुराई के पास भूलकर भी न जाते थे । उन्हें किसी तरह का लालच भी न था । उनके ज़माने के बड़े-बड़े लोग और बादशाह उनको बहुत कुछ देना चाहते थे, मगर वे किसी से कुछ न लेते, अपनी ग़रीबी में ही ख़ुश रहते । वे अल्लाह की इबादत को ही सबसे बड़ी दौलत समझते थे । इस बारे में उनके बहुत-से क़िस्से मशहूर हैं । एक मज़ेदार और नसीहतवाली कहानी सुनिए —

उनके ज़माने में सुलेमान बिन अब्दुल मलिक ख़लीफ़ा था और उसकी तरफ़ से हज़रत उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रह०) मदीने के गवर्नर थे। हज़रत उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रह०) ख़ुद भी बड़े अल्लाहवाले थे और अल्लाहवालों से बड़ी मुहब्बत और मेलजोल रखते थे । हज़रत सफ़वान से भी उनके ताल्लुक़ात अच्छे थे ।

एक बार ख़लीफ़ा सुलैमान मदीने आया हुआ था । ज़ोहर की नमाज़ का वक़्त आया तो नमाज़ पढ़ने के लिए मस्जिद में गया । हज़रत उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रह०) भी साथ थे । वहाँ एक कोने में हज़रत सफ़वान (रह०) अल्लाह की याद में लगे हुए थे । ख़लीफ़ा सुलैमान ने उनको देखा तो देर तक देखता ही रहा । फिर हज़रत उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रह०) से पूछा, "ये कौन बुज़ुर्ग हैं ? देखने में तो अल्लाहवाले मालूम होते हैं ।" उन्होंने जवाब दिया, "यह सफ़वान बिन सलीम ज़ुहरी हैं और सचमुच बड़े अल्लाहवाले बुज़ुर्ग हैं । दीन का इल्म इन्होंने प्यारे रसूल (सल्ल०) के सहाबा (रज़ि०) से सीखा है । अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि०), अनस बिन मालिक (रज़ि०) और ऐसे ही दुसरे सहाबा इनके उस्ताद थे और इनके

शागिर्द भी बड़े-बड़े आलिम और दीनदार हैं ।"

ख़लीफ़ा सुलेमान पहले ही हज़रत सफ़वान (रह०) के बारे में सुन चुका था । उसने अपने ग़ुलाम को बुलाया और उसके हाथ पाँच सौ दीनार (सोने की अशरफ़ियों) की थैली उनको भेजी । ग़ुलाम ने थैली ले जाकर हज़रत सफ़वान (रह०) के सामने रख दी और कहा, "यह ख़लीफ़ा ने आपके लिए भेजी है और वे भी यहीं मौजूद हैं ।"

हज़रत सफ़वान (रह०) ने ग़ुलाम को देखा और बोले, "तुमको धोखा हुआ, किसी और के लिए भेजी होगी ।" ग़ुलाम ने जवाब दिया, "नहीं हज़रत ! आप ही के लिए भेजी है । आपका नाम सफ़वान है न ?" कहा, "नाम तो मेरा सफ़वान ही है । अच्छा जाओ, फिर पूछकर आओ तो ।"

ग़ुलाम पूछने के लिए गया और जैसे ही कुछ दूर गया, हज़रत सफ़वान (रह०) ने अपने जूते उठाए और चुपके से मस्जिद से निकल गए । फिर जितनी देर ख़लीफ़ा सुलैमान मस्जिद में रहा, वे मस्जिद में न गए । सुलैमान यह देखकर दंग रह गया । अल्लाह-अल्लाह, कैसे-कैसे बेनियाज़ लोग हमारे बुज़ुर्गों में गुज़रे हैं ! अल्लाह हमें भी ऐसा ही बनाए ।

आमीन !

हज़रत अबू मुहम्मद यहया उनदुलुसी (रह०)

हमारे मुल्क के पश्चिम में एक समुद्र है जिसे 'बहरे अरब' कहते हैं। अगर समुद्री जहाज़ में सवार होकर समुद्र ही समुद्र में चले जाएँ तो आगे चलकर एक और समुद्र में पहुँचेंगे जिसे 'बहरे क़ुलज़ुम' यानी लाल सागर कहते हैं। बहरे क़ुलज़ुम में उत्तर की तरफ़ चलें तो रास्ते में एक बन्दरगाह से गुज़रेंगे। इस बन्दरगाह का नाम 'जद्दह' है। हमारे मुल्क से जो लोग समुद्री जहाज़ से हज करने के लिए जाते हैं वे इसी जद्दह की बन्दरगाह पर उतरते हैं और फिर यहाँ से मोटरों से मक्का शरीफ़ और मदीना शरीफ़ जाते हैं।

जद्दह से और आगे चलें तो दो-तीन दिन के बाद एक समुद्र में पहुँचेंगे। इसका नाम 'बहरे रूम' है। बहरे रूम में पूरब की तरफ़ मुड़कर आठ-दस दिन चलने के बाद एक मुल्क में पहुँचेंगे जिसका नाम 'स्पेन' है। स्पेन को उनदुलुस भी कहते हैं। हमारे मुल्क से उनदुलुस क़रीब चार हज़ार मील दूर है। उनदुलूस में मुसलमानों ने सात सौ साल तक हुकूमत की है। उनदुलुस में जब मुसलमानों की हुकूमत थी तो वहाँ बड़े-बड़े आलिम पैदा हुए। इन आलिमों में हज़रत अबू मुहम्मद यहया उनदुलुसी (रह०) सबसे ज़्यादा मशहूर हैं।

हज़रत यहया उनदुलुसी (रह०) एक ग़ुलाम के बेटे थे, लेकिन वे बहुत बड़े आलिम और बड़े मुत्तक़ी बुज़ुर्ग थे। मुत्तक़ी उसे कहते हैं जो सबसे ज़्यादा अल्लाह से डरता हो और अल्लाह ही के डर से बुरे कामों से बचता हो।

क़ुरआन में है कि तुममें सबसे ज़्यादा शरीफ़ और बुज़ुर्ग वह है जो तुममें सबसे ज़्यादा मुत्तक़ी हो। यही वजह है कि मुसलमान मुत्तक़ी आदमी को सबसे बड़ा बुज़ुर्ग और शरीफ़ समझते हैं और उसकी इज़्ज़त करते हैं मुसलमान यह नहीं देखते कि कोई ग़ुलाम है या अछूत ख़ानदान से है या किसी ऊँचे ख़ानदान का है या मालदार और बाअसर आदमी है। बल्कि

यह देखते हैं कि वह अल्लाह के डर से बुरे कामों से बचता है या नहीं, यानी मुत्तक़ी है या नहीं। अगर मुत्तक़ी है तो उसकी बड़ी इज़्ज़त करते हैं।

हज़रत यहया (रह०) थे तो ग़ुलाम के बेटे, लेकिन बड़े मुत्तक़ी बुज़ुर्ग थे और मुल्क के सबसे बड़े आलिम। इसलिए मुसलमान उनकी बड़ी इज़्ज़त करते थे और उन्हें बहुत मानते थे।

हज़रत यहया (रह०) ने क़ुरआन और हदीस का इल्म सीखने में बड़ी मेहनत की। उनके ज़माने में सफ़र की ये आसानियाँ नहीं थीं, जो आज हैं। न रेल थी, न हवाई जहाज़। समुद्री जहाज़ भी ऐसे मज़बूत और आरामवाले न थे जैसे आजकल होते हैं। उस ज़माने में ऐसा भी होता कि समुद्रों में तूफ़ान आया करते थे और जहाज़ उनमें घिरकर डूब जाते थे। फिर एक जगह से दूसरी जगह पहुँचने में महीनों और बरसों लग जाते थे। यही उनदुलुस से जद्दह तक देखिए, आजकल समुद्री जहाज़ आठ-दस दिन में आ जाते हैं। लेकिन हज़रत यहया (रह०) के ज़माने में महीनों लग जाते थे। और अगर उन्दुलुस से जद्दह ख़ुश्क़ी के रास्ते से आएँ तो बरसों लग जाए। ऐसे ज़माने में हज़रत यहया (रह०) ने इल्म हासिल करने के लिए हज़ारों मील का सफ़र किया और वह भी ज़्यादातर पैदल!

हज़रत यहया (रह०) के ज़माने में अच्छे-अच्छे आलिम और दीन के बड़े-बड़े इमाम मक्का, मदीना, कूफ़ा और बसरा में थे। मदीना शरीफ़ में इमाम मालिक (रह०) मस्जिदे नबवी के अन्दर हदीस का दर्स दिया करते थे। हज़रत यहया (रह०) इल्म हासिल करने के शौक़ में उनदुलुस से चले। महीनों सफ़र करके मक्का शरीफ़ होते हुए मदीना शरीफ़ पहुँचे। उस वक़्त उनकी उम्र सतरह-अठारह साल थी। कुछ दिन मक्का शरीफ़ में ठहरे और वहाँ के बड़े-बड़े इमामों के पास रहकर पढ़ा, फिर मदीना शरीफ़ पहुँचकर इमाम मालिक (रह०) के शागिर्द हो गए।

एक दिन इमाम मालिक (रह०) शागिर्दों को दर्स दे रहे थे कि बाहर शोर हुआ, "हाथी आया, हाथी आया।" वहाँ हाथी नहीं होता, लोगों ने हाथी देखा न था। हाथी का नाम सुना तो सब देखने के लिए दौड़

पड़े । हज़रत यहया (रह०) इमाम मालिक (रह०) के पास बैठे रहे । इमाम मालिक (रह०) ने उनसे पूछा, "उनदुलुस में तो हाथी नहीं होता, फिर तुम हाथी देखने क्यों नहीं गए ?" यहया (रह०) बोले, "जनाब ! मैं यहाँ क़ुरआन और हदीस का इल्म सीखने आया हूँ, हाथी देखने नहीं आया ।"

इस जवाब से इमाम मालिक (रह०) बहुत ख़ुश हुए और उस दिन से वे उनको आक़िल यानी बड़ा समझदार कहकर पुकारने लगे ।

जो आदमी इस तरह, इतने शौक़ से पढ़े, मेहनत करे और अल्लाह ने उसको समझ भी अच्छी दी हो तो फिर सोचिए कि वह कितना बड़ा आलिम हो सकता है । अपने शौक़, मेहनत और अल्लाह की मेहरबानी से हज़रत यहया (रह०) थोड़े ही दिनों में बहुत बड़े आलिम हो गए । इल्म सीखकर जब वे वापस उनदुलुस पहुँचे तो उनके पहुँचने से पहले, उनके इल्म की शोहरत वहाँ पहुँच चुकी थी और उनके इल्म की वहाँ धूम मची हुई थी । उनदुलुसवालों ने उन्हें हाथों हाथ लिया और उनसे पढ़ने के लिए टूट पड़े । हज़रत यहया (रह०) ने उनदुलुस में क़ुरआन और हदीस का इल्म ख़ूब फैलाया ।

उस वक़्त अमीर अब्दुर्रहमान बिन हकम उनदुलुस का बादशाह था । वह आलिमों की बड़ी इज़्ज़त करता था । उसने भी हज़रत यहया (रह०) का नाम सुना तो बुला भेजा और चाहा कि उन्हें मुल्क का सबसे बड़ा क़ाज़ी यानी चीफ़ जस्टिस बना दे । लेकिन हज़रत यहया (रह०) ने यह ओहदा क़बूल नहीं किया । उन्होंने बादशाह को जवाब दिया— "मैंने क़ुरआन और हदीस का इल्म नौकरी करने और पैसा कमाने के लिए नहीं सीखा, बल्कि इसलिए सीखा है कि उनदुलुस में ज़्यादा से ज़्यादा इल्म फैलाऊँ और ज़्यादा से ज़्यादा लोगों को अल्लाह और अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के हुक्म बताऊँ ।"

इस जवाब से अमीर अब्दुर्रहमान ख़फ़ा नहीं हुआ, बल्कि उसकी नज़र में उनकी इज़्ज़त और भी ज़्यादा बढ़ गई । दूसरे लोग भी और ज़्यादा चाहने लगे । फिर यह कि हज़रत यहया (रह०) ने जो कुछ पढ़ा था उसपर अमल भी करते थे । यानी क़ुरआन और हदीस में जिस काम के करने

का हुक्म है, उसे करते और जिससे बचने का हुक्म है, उससे बचते। प्यारे नबी (सल्ल०) की पैरवी की कोशिश करते। इसी को अमल कहते हैं। हज़रत यहया (रह०) के पास इल्म भी था और अमल भी। ऐसे आलिम का इस्लाम में बड़ा दर्जा है। ऐसा आलिम अल्लाह के सिवा किसी से नहीं डरता, चाहे वह बादशाह ही क्यों न हो। वह अल्लाह की मरज़ी के ख़िलाफ़ कोई बात नहीं कहता। हज़रत यहया (रह०) तो बादशाह को बड़ी सख़्ती से टोकते थे।

एक बार ऐसा हुआ कि अमीर अब्दुर्रहमान ने रमज़ान के महीने में रोज़ा तोड़ दिया। रोज़ा तोड़ने में कफ़्फ़ारा देना पड़ता है। कफ़्फ़ारे का मतलब यह कि रोज़ा तोड़नेवाला या तो ग़ुलाम आज़ाद करे या साठ ग़रीबों को खाना खिलाए या दो महीने के रोज़े लगातार रखे।

अमीर अब्दुर्रहमान को रोज़ा तोड़ने का बड़ा अफ़सोस था। उसने आलिमों को इकट्ठा किया और पूछा कि क्या करना चाहिए कि ख़ुदा इस ग़लती को माफ़ कर दे। सबसे पहले उसने हज़रत यहया (रह०) से पूछा। उन्होंने जवाब दिया कि दो महीने तक लगातार रोज़े रखें। हज़रत यहया (रह०) की बात सुनकर दूसरे आलिम ख़ामोश रहे। लेकिन जब सब लोग वहाँ से उठकर बाहर आए तो दूसरे आलिमों ने हज़रत यहया (रह०) से पूछा कि जनाब ! जब रोज़ा तोड़नेवाला ग़ुलाम आज़ाद करके या साठ ग़रीबों को खाना खिलाकर कफ़्फ़ारा अदा कर सकता है तो आपने अमीर अब्दुर्रहमान को मुश्किल में क्यों डाला ! उसके लिए तो दो महीने लगातार रोज़े रखना बड़ा मुश्किल काम है।

हज़रत यहया ने जवाब दिया, "इसी लिए तो मैंने कफ़्फ़ारे का यह तरीक़ा बताया ताकि अमीर फिर ऐसी ग़लती न करे। ग़ुलाम आज़ाद करना उसके लिए बहुत आसान है। उसके पास दौलत की कमी नहीं। दौलत के बल पर वह सैकड़ों, हज़ारों लोगों को वैसे भी खाना खिला दिया करता है। अगर मैं अमीर को यह आसान तरीक़ा बताता तो वह अकसर रोज़ा तोड़ देता और आसान कफ़्फ़ारा अदा कर देता। अब दो महीने के रोज़े रखेगा तो पता चलेगा कि ग़लत काम का क्या नतीजा होता है।"

आलिमों ने यह सुना तो मान गए और कहा कि आपने सच कहा और मुनासिब कफ़्फ़ारा बताया ।

कैसे समझदार और अच्छे थे हमारे बुज़ुर्ग ! अल्लाह तआला हमें भी ताक़त दे कि हम अपने बुज़ुर्गों के तरीक़ों पर चलें और हर काम अपने अल्लाह को ख़ुश करने के लिए करें ।

आमीन

हज़रत अब्दुल्लाह बिन ताऊस (रह०)

अबू जाफ़र मनसूर बड़ा ज़बरदस्त और मशहूर ख़लीफ़ा हुआ है । अगर कोई आदमी उसके सामने ऐसी बात कह देता जो उसे अच्छी न लगती तो उसे बड़ी कड़ी सज़ा देता । लेकिन हमारे बुज़ुर्गों की तारीख़ ऐसे पक्के और सच्चे मुसलमानों के हालात से भरी पड़ी है जो बादशाहों के सामने भी खरी-खरी बातें कहने से कभी नहीं डरे । हमारे इन बुज़ुर्गों में एक हज़रत अब्दुल्लाह बिन ताऊस (रह०) भी हैं । उनके वालिद हज़रत ताऊस (रह०) बहुत बड़े मुहद्दिस यानी हदीस के आलिम थे । हज़रत अब्दुल्लाह (रह०) ने हदीसें अपने वालिद साहब से ही सीखीं और याद कीं ।

एक बार ख़लीफ़ा अबू जाफ़र मनसूर ने अपने वक़्त के दो मशहूर आलिमों को बुलाया— एक हज़रत इमाम मालिक (रह०) और दूसरे हज़रत अब्दुल्लाह बिन ताऊस (रह०)— ये दोनों ही उस वक़्त नौजवान थे । दोनों बुज़ुर्ग ख़लीफ़ा के पास पहुँचे । थोड़ी देर बैठे रहे । फिर ख़लीफ़ा मनसूर ने हज़रत अब्दुल्लाह (रह०) से कहा, "आप अपने वालिद से सुनी हुई कोई हदीस सुनाइए ।

हज़रत अब्दुल्लाह बिन ताऊस (रह०) को बहुत-सी हदीसें याद थीं । लेकिन उन्होंने ऐसी हदीस सुनाई कि ख़लीफ़ा झल्लाकर रह गया । उन्होंने सुनाया— "मुझसे मेरे बाप ने यह हदीस बयान की है कि क़ियामत के दिन सबसे ज़्यादा अज़ाब उस शख़्स पर होगा जिसको अल्लाह तआला ने बादशाह बनाया और उस बादशाह ने ज़ुल्म किया ।"

यह हदीस सुनकर ख़लीफ़ा मनसूर ग़ुस्से के मारे पहलू बदलने लगा । हज़रत इमाम मालिक (रह०) को खटका पैदा हुआ कि ख़लीफ़ा हज़रत अब्दुल्लाह (रह०) को ज़रूर क़त्ल कर देगा ।

थोड़ी देर बाद ख़लीफ़ा ने हज़रत अब्दुल्लाह बिन ताऊस (रह०) से कहा कि ज़रा क़लम-दवात उठा दीजिए । हज़रत अब्दुल्लाह (रह०) ने सुनी-अनसुनी कर दी और क़लम-दवात उठाकर नहीं दिया । उसने फिर

माँगा, उन्होंने फिर तवज्जोह न की। उसने तीसरी बार फिर माँगा, वे अपनी जगह से फिर भी न उठे। ख़लीफ़ा बहुत बिगड़ा और पूछा, "आपने मुझे क़लम-दवात उठाकर क्यों नहीं दिया।"

हज़रत ने जवाब दिया, "तुम इस वक़्त ग़ुस्से में हो। मुझे डर है कि कहीं ग़ुस्से में तुम कोई ऐसा हुक्म लिख दो कि ख़ुदा क़ियामत के दिन तुमको पकड़े और क़लम-दवात उठाकर देने की वजह से मुझसे भी नाराज़ हो कि तूने क़लम-दवात उठाकर क्यों दिया।"

यह सुनकर ख़लीफ़ा ने हुक्म दिया कि आप दोनों यहाँ से चले जाएँ। हज़रत बोले, "यही तो हम भी चाहते हैं।" और उसके सामने से उठकर चले आए।

हज़रत इमाम मालिक फ़रमाया करते थे कि उस दिन मैंने जाना कि ताऊस का बेटा कितना सच्चा और पक्का मुसलमान और बुज़ुर्ग इनसान है।

देखा आपने ! ऐसे थे हमारे बुज़ुर्ग। वे ख़ुदा के सिवा किसी से नहीं डरते थे। काश कि हम भी ऐसे ही हों !

आमीन !

हज़रत इमाम सुफ़यान सौरी (रह०)

क़अक़ाअ ,बिन हकीम कहते हैं कि एक दिन मैं ख़लीफ़ा मेहदी के पास बैठा हुआ था । इतने में ख़लीफ़ा के बुलावे पर हज़रत सुफ़यान सौरी (रह०) तशरीफ़ लाए और जिस तरह आम मुसलमानों को सलाम किया जाता है उसी तरह महदी को सलाम किया—"अस्सलामु अलैकुम" कहा और बैठ गए ।

सलाम करते वक़्त न झुके, न हाथ उठाया और न बैठने की इजाज़त ली । यह बात मेहदी के दरबारी क़ायदे के ख़िलाफ़ थी । मेहदी मुस्कुराया, फिर बोला, ऐ सुफ़याना ! आप हमारे डर से इधर-उधर भागते फिरते हैं और यह समझते हैं कि हम आपके साथ बुरा सुलूक करना चाहें तो नहीं कर सकते । अब बताइए इस वक़्त आप हमारे बस में हैं, अगर हम चाहें और हुक्म दें तो आपको अभी ज़लील और रुसवा किया जा सकता है ।

ख़लीफ़ा मेहदी के यह कहने पर हज़रत सुफ़यान सौरी (रह०) ने जवाब दिया, "अगर तुम मेरे साथ इस तरह का बरताव करोगे तो बादशाहों का बादशाह (अल्लाह) जिसके बस में सब कुछ है और जो हक़ व बातिल को छाँटकर अलग-अलग कर देता है, वह भी तुम्हारे साथ ऐसा ही फ़ैसला करेगा ।"

उस वक़्त मेहदी का लड़का रबीअ, मेहदी के पीछे, तलवार की टेक लगाए खड़ा था । वह हज़रत सुफ़यान का जवाब सुनकर ग़ुस्से से बेताब हो गया और ख़लीफ़ा से कहने लगा, "अमीरुल मोमिनीन, यह जाहिल आदमी आपके साथ गुस्ताख़ी कर रहा है । इजाज़त दीजिए कि इसकी गर्दन उड़ा दूँ ।" मेहदी ने उससे कहा, "तुम बदनसीब हो, तुम्हें मालूम नहीं ये लोग क्या-क्या ख़ूबियाँ रखते हैं । अगर तुम इनको क़त्ल कर दोगे तो हम सब तबाह हो जाएँगे । मैं इनकी सच्चाई पर इनको कूफ़े का क़ाज़ी (जज) बनाता हूँ और ऐसा क़ाज़ी कि इनके फ़ैसले की अपील भी न हो सके ।" फिर मेहदी ने इस मज़मून का हुक्मनामा लिखकर उन्हें दिया और

कूफ़ा जाने को कहा ।

हज़रत अबू सुफ़यान सौरी रास्ते से भाग निकले । हुक्मनामा दजला में बहा दिया और फिर उम्र भर हुकूमत के सिपाहियों से छिपते फिरे । ख़लीफ़ा ने बहुत तलाश किया मगर उन्हें न पा सका, यहाँ तक कि उनका इंतिक़ाल हो गया ।

हज़रत वाक़िदी (रह०)

हमारे बुज़ुर्गों में बहुत-से बुज़ुर्ग ऐसे गुज़रे हैं जो अपने नाम के बजाए अपने 'लक़ब' से ज़्यादा मशहूर हुए। लक़ब उस नाम को कहते हैं जो किसी काम, ख़ानदान या मुक़ाम के लगाव से मशहूर हो जाता है। जैसे हमारे एक बहुत बड़े बुज़ुर्ग ने हदीसों की एक बहुत बड़ी किताब 'बुख़ारी शरीफ़' लिखी। वे बुख़ारा के रहनेवाले थे, इसलिए इमाम बुख़ारी मशहूर हो गए। बुख़ारी शरीफ़ लिखकर इमाम बुख़ारी (रह०) ने दीन की बहुत बड़ी ख़िदमत की। इसी तरह एक बुज़ुर्ग हुए हज़रत ज़ुन्नून मिस्री (रह०)। ख़ुदा की क़ुदरत ! एक बार वे एक बड़ी मुसीबत में फँस गए तो अल्लाह तआला ने मछलियों के ज़रिए उनकी मदद फ़रमाई। अरबी में मछली को 'नून' कहते हैं। इसलिए ये बुज़ुर्ग 'ज़ुन्नून' यानी मछलियोंवाले मशहूर हो गए, और मिस्री इसलिए कि वे मिस्र के एक गाँव में पैदा हुए थे।

इसी तरह दूसरे बहुत-से बुज़ुर्ग हुए हैं जिनका नाम बड़े-बहे आलिम ही जानते हैं। आम लोग उनको उनके लक़ब से ही जानते हैं। इन हज़रात ने दीन की बड़ी-बड़ी ख़िदमतें अंजाम दी हैं।

अब इमाम वाक़िदी (रह०) के बारे में सुनिए। उनके दादा का नाम था वाक़िद, बस इसी लगाव से लोग उन्हें वाक़िदी कहने लगे। हज़रत वाक़िदी (रह०) प्यारे रसूल (सल्ल०) की मदीना शरीफ़ को हिजरत के 130 साल बाद पैदा हुए। यह वह ज़माना था कि सहाबा (रज़ि०) की औलादें उनके शार्गिद और जाननेवाले लोग मौजूद थे।

हज़रत वाक़िदी (रह०) को प्यारे रसूल (सल्ल०) के हालात जानने का बड़ा शौक़ था और यही ख़िदमत उन्होंने अपने ज़िम्मे ले ली। उन्होंने प्यारे रसूल (सल्ल०) के हालात बड़ी अच्छी तरह लिखे। उनको लोग आज भी बड़ी अच्छी तरह और बड़े शौक़ से पढ़ते हैं। हज़रत वाक़िदी (रह०) सहाबा (रज़ि०) की औलादों और उनको जाननेवाले लोगों के पास जाते और पूछते कि प्यारे रसूल (सल्ल०) पर क्या गुज़री। फिर जो कुछ

बताया जाता उसे लिख लेते । हज़रत वाक़िदी (रह०) को उन जंगों और लड़ाइयों के हालात सुनने में बड़ा मज़ा आता था जो प्यारे रसूल (सल्ल०) और उनके दुश्मनों के बीच हुई थीं । हज़रत वाक़िदी (रह०) ने ये सारे हालात पूछ-पूछकर इतनी किताबें लिख डालीं कि उनके घर किताबों के ढेर लग गए । उन किताबों से हज़रत वाक़िदी (रह०) का नाम दूर-दूर तक मशहूर हो गया और लोग उनकी इज़्ज़त करने लगे । सिर्फ़ लोग ही नहीं, उस वक़्त का बादशाह मामून रशीद, उनका वज़ीर बरामकी और तमाम बड़े-बड़े लोग भी उनकी बड़ी आवभगत करते थे ।

हज़रत वाक़िदी (रह०) में बहुत-सी ख़ूबियाँ और अच्छाइयाँ थीं । वे तक़रीर बहुत उमदा करते थे । जो कुछ सुनते उसे ख़ूब अच्छी तरह याद रखते । उनमें सख़ावत और फ़ैयाज़ी कूट-कूटकर भरी हुई थी । फ़ैयाज़ी का मतलब यह है कि रुपये-पैसों से दूसरों की ख़िदमत करना। अपनी फ़ैयाज़ी की वजह से वे हमेशा ख़ाली हाथ ही रहते । उनकी फ़ैयाज़ी का एक बड़ा मज़ेदार क़िस्सा मशहूर है, जिसको उन्होंने ख़ुद लिखा । वे लिखते हैं—

"एक बार ईद आई तो मेरे घर में कुछ न था कि ईद पर बच्चों के कपड़े ही बनवा देता । बच्चों ने परेशान किया और रोए-चीख़े तो मैं सोचने लगा कि क्या करूँ ? एक तदबीर समझ में आई । मैं अपने एक दोस्त के पास गया । मेरा वह दोस्त एक सौदागर था । मैंने उससे सारा हाल कहा । उसके पास एक लाख दो सौ की थैलियाँ रखी हुई थीं । वे सब उसने मुझे थमा दीं । मैं थैलियाँ लेकर घर आया । लेकिन अभी मैंने थैलियाँ खोली भी नहीं थीं कि मेरा एक हाशिमी दोस्त आ गया । वह उस वक़्त बहुत घबराया हुआ था । उसने बताया कि वह क़र्ज़दार है और आज कर्ज़ की अदायगी का वादा है । अगर न देगा तो न जाने क्या बेइज़्ज़ती हो । मैंने उसे परेशान देखा तो बीवी से कहा कि, "लाओ आधी रक़म हाशिमी को दे दें और आधी से अपना काम चलाएँ ।" मेरी बीवी ने कहा, "वाह यह ख़ूब रही । तुम्हारा सौदागर दोस्त ज़्यादा पढ़ा-लिखा नहीं और उसने तुमको इतनी बड़ी रक़म दे दी । और तुम इतने बड़े आलिम अपने दोस्त

हाशिमी दोस्त को आधे पर टालना चाहते हो । यह तो कोई बात न हुई ।"
बीवी के इस तरह कहने पर मैंने वे सब थैलियाँ हाशिमी को दे दीं ।

अब एक और मज़ेदार बात हुई । जिस सौदागर दोस्त ने मुझे वे थैलियाँ दी थीं, उसके पास बस वही कुछ जमा पूँजी थी । अब उसे एक बड़ी ज़रूरत पेश आ गई तो वह रक़म की तलाश में निकला । वह हाशिमी भी सौदागर का दोस्त था । सौदागर हाशिमी के घर पहुँचा और उससे सारा हाल कहा । हाशिमी ने वह सब थैलियाँ उठाकर उसे दे दीं । सौदागर ने वे थैलियाँ पहचानीं तो हैरान रह गया । वह दौड़ा हुआ मेरे पास आया, थैलियाँ दिखाईं और अपना हाल कहा और मेरा हाल सुना ।

अब राय हुई कि चूँकि हम तीनों को ही ज़रूरत है, आओ तीनों बराबर-बराबर बाँट लें । हमने ऐसा ही किया । इसकी ख़बर ख़लीफ़ा मामून रशीद के वज़ीर को हुई । उसने मुझे बुलवाया, हाल पूछा । वह हम तीनों से बहुत ख़ुश हुआ । उसने मुझे दस हज़ार दीनार यानी सोने के सिक्के दिए और कहा कि दो हज़ार अपने सौदागर दोस्त को देना, दो हज़ार हाशिमी को, दो हज़रत ख़ुद लेना और चार हज़ार अपनी बीवी को देना, क्योंकि तुम्हारी बीवी तुमसे भी ज़्यादा फ़ैयाज़ निकली ।

हज़रत वाक़िदी (रह०) इतने बड़े आलिम थे कि छोटे-बड़े सब उनको मानते थे । ख़लीफ़ा मामून ने उनको बग़दाद का क़ाज़ी भी बना दिया था । अगर चाहते तो अपने लिए ख़ूब दौलत पैदा करते । लेकिन उन्होंने ख़ुद कमाकर घर का काम चलाया । वे गेहूँ की तिजारत का काम करते थे । लेकिन फ़ैयाज़ी की वजह से पैसा हाथ में न रुकता था । इसलिए साझा करके घर का काम चलाते थे । जो हिस्सा बाँट में मिलता उससे अपना और घरवालों का पेट पालते। उन्होंने पैसा जोड़कर कभी नहीं रखा, जो हाथ में आया उसे ख़ैरात कर दिया । जब अल्लाह को प्यारे हुए तो घर में कफ़न भी न निकला । ख़लीफ़ा मामून रशीद को ख़बर हुई तो उसने कफ़न-दफ़न के लिए रक़म भेजी ।

ऐसे फ़ैयाज़ और अल्लाहवाले थे हमारे बुज़ुर्ग ! काश कि हम भी ऐसे ही होते और उनकी तरह दूसरों की ख़िदमत करते !